

॥ आनन्दामृतवर्षिणी ॥

जिसको

श्रीमत् परमहंस परिव्राज स्वामी आनन्द-
गिरि महाराज ने रचा

जिसमें

पञ्चदशी वेदान्तसार, तत्त्वानुसन्धान, श्रीमद्भगवद्गीता, आत्म-
बोधयन्त्र माण्डूक्य, बृहदारण्य, छान्दोग्योपनिषद् और पञ्चीकरण
वार्तिकादि श्रीशङ्करभगवान, भाष्यकारसे आदिले अनेक
आचार्यों के रचित ग्रन्थों का सारांश विशेष श्रुति
वेदवाक्य और हरिभक्तोंके ज्ञानभक्ति वैराग्यके दृढार्थ
श्रीकृष्णचन्द्र परब्रह्मकी महिमा और मुक्तिका उपाय
दृष्टान्तपूर्वक बालकों के सुख बोध और ... नि-
मित्त अतिसुगम और ललित ...

सातवीं बार

लखनऊ

मुंशी नवलकिशोर (सी, आई, ई) के छापेखाने

दिसम्बर सन् १९०७ ई० ॥

आनन्दामृतवर्षिणी का सूचीपत्र ॥



आनन्दामृतवर्षिणी का सूचीपत्र ।

इति पञ्चमाध्यायः ॥

अथ षष्ठाध्यायः ॥

इति षष्ठोध्यायः ॥

अथ सप्तमाध्यायः ॥

इत्यानन्दामृतवर्षिण्याः सूचीपत्रं समाप्तिं पफाण ॥

पंचदशी ॥

ऐहिकामुष्मिकव्रातसिद्ध्यैर्मुक्तेश्चसिद्धये । बहुकृत्यंपुराभूद्यत्तत्सर्वमधुनाकृतम् ४० तदेतत्कृतकृत्यत्वं प्रतियोगपुरस्सरम् । अनुसंदधदेवायमेवंतृप्यतिनित्यशः ४१ दुःखिनोज्ञास्संस्सरन्तुकामंपुत्राद्यपेक्षया । परमानन्दपूर्णोऽहंसंस्मरामिकिमिच्छया ४२ अनुतिष्ठन्तिकर्माणिपरलोकयियासवः । सर्वलोकात्मकःकस्मात्त्वनुतिष्ठामिकिंकथम् ४३ वाच्यक्षतान्तेशास्त्राणिवेदानध्यापयन्तुवा । येऽत्राधिकारिणोमेतुनाधिकारोक्रियत्वतः ४४ निद्राभिक्षेस्नानशौचेनेच्छामिनकरोमिच । द्रष्टारश्चेत्कल्पयंतिकिंमेस्यादनुकल्पनात् ४५ गुंजापुंजादिदह्येतनान्यारोपितवह्निना । नान्यारोपितसंसारधर्मानेवमहंभजे ४६ शृण्वंत्वज्ञाततत्त्वास्तेजानन्कस्माच्छृणोम्यहम् । मन्यन्तांसंशयापन्नानमन्येऽहमसंशयः ४७ विपर्यस्तोनिदिध्यासेत् किंध्यानमविपर्यये । देहात्मत्वविपर्यासंनकदाचिद्भजाम्यहम् ४८ अहंमनुष्यइत्यादिव्यवहारोविनाप्यमुम् । विपर्यासंचिराभ्यस्तवासनातोऽवकल्पते ४९ प्रारब्धकर्मणिक्षीणेव्यवहारोनिवर्त्तते । कर्माक्षयेत्वसौनैवशाम्येद्ध्यानसहस्रतः ५० विरलत्वंव्यवहृतेरिष्टंचेद्ध्यानमस्तुते । अबाधिकांव्यवहृतिंपश्यन्ध्यायाम्यहंकुतः ५० विक्षेपोनास्तियस्मान्मे नसमाधिस्ततोमम । विक्षेपोवासमाधिर्वा मनसःस्याद्विकारिणः ५२ नित्यात्मभवरूपस्य कोमेवानुभवःपृथक् । कृतंकृत्यंप्रापणीयं प्राप्तमित्येवनिश्चयः ५३ व्यवहारोलौकिकोवाशास्त्रीयोवान्यथापिवा । ममकर्तुरलेपस्ययथारब्धंप्रवर्त्तताम् ५४ अथवाकृतकृत्योऽपिलोकानुग्रहकाम्यया । शास्त्रीयेणैवमार्गेण वर्त्तेहंकाममत्क्षतिः ५५ देवार्चनस्नानशौचभिक्षादौवर्त्ततांवपुः । तारंजपतुवाक्तद्वत्पठत्वाम्नायमस्तकम् ५६ विष्णुंध्यायतुधीर्यद्वाब्रह्मानन्देविलीयताम् । साक्ष्यहंकिञ्चिदप्यत्रनकुर्वनापिकारये ५७ कृतकृत्यतयातृप्तः प्राप्तप्राप्यतया पुनः । तृप्यन्नेवंस्वमनसा मन्यतेऽसौनिरन्तरम् ५८ धन्योऽहंधन्योऽहंनित्यंस्वात्मानमंजसावेद्मि । धन्योऽहंधन्योऽहंब्रह्मानन्दोविभातिमेस्पष्टम् ५९ धन्योऽहंधन्योऽहंदुःखंसांसारिकंनवीक्षेऽद्य । धन्योऽहंधन्योऽहंस्वस्याज्ञानंपलायितंक्वापि ६० धन्योऽहंधन्योऽहंकर्त्तव्यंमेनविद्यतेकिञ्चित् । धन्योऽहंधन्योऽहंप्राप्तव्यंसर्वमद्यसम्पन्नम् ६१ धन्योऽहंधन्योऽहंतृप्तेर्मेकोपमाभवेल्लोके । धन्योऽहंधन्योऽहंधन्योधन्यःपुनःपुनर्धन्यः ६२ अहोपुण्यमहोपुण्यंफलितंफलितंदृढम् । अस्यपुण्यस्यसम्पत्तेरहोवयमहोवयम् ६३ अहोशास्त्रमहोशास्त्रमहोगुरुरहोगुरुः । अहोज्ञानमहोज्ञानमहोसुखमहोसुखम् ६४ ॥ इति ॥



आनन्दामृतवर्षिणी ॥

मूल ॥

श्रीसच्चिदानन्दस्वरूप जो इन्दिरेश्वर ॥

टी० । श्रीलक्ष्मी और शोभा और मायाकूं कहते हैं तीनों करके अर्थ लगताहै सच्चिदानन्द लक्ष्मीपति शोभा- वान् मायाके स्वामी माया करके युक्त परन्तु विशेष यों है सच्चिदानन्द मायाके स्वामी सच्चिदानन्द में तीन पद हैं सत् चित् आनन्द अब यों देखनाचाहिये कितीनपद क्यों कहे इसका यों कारण है जो केवल सत् कहते तो न्यायशास्त्रवाले आकाशकूंभी सत् कहतेहैं सो वह जड़ है इस लिये चित्भी कहा वह दुःखरूप वा आनन्दरूप है इसलिये आनन्दभी कहा और सत्ता दो प्रकार कीहै व्यावहारिकी पारमार्थिकी व्यावहारिकसत्ता वह है जो दे- हादिमें है और पारमार्थिकीसत्ता जो सच्चिदानन्द ब्रह्ममें है इस जगह पारमार्थिकीसत्तासे प्रयोजनहै इसीप्रकार चैतन्यता आनन्दताभी व्यावहारिकी पारिमार्थिकी भेदसे दो प्रकारकी है ॥

सू० । इन्दीवर इन्द्रमणी के सदृश जो सुन्दर रसा कर के लालित्यहैं पादपङ्कज जिन्होंके ऐसे जो ॥

टी० । इन्दीवर इन्द्रमणी दो विशेषण देनेका यो प्रयोजन है भक्तों के लिये तो इन्दीवर की सदृश कोमल और दुष्टों के लिये इंद्रमणी की सदृश कठिन हैं ॥

सू० । रामेश्वर और वंदी कियेहैं इंद्रके रिपोंके वृंद जिन्होंने ऐसे जो सुरेश्वर और आनंद है वीर्य्य जिन्हों का थे में जो परमेश्वर! और मंद मुसुकान करके आनंद किये हैं लोकों के वृंद जिन्होंने ऐसे जो नंदजीके नंदन और आत्मरूप करके चिन्तवन करते हैं जिन्होंकूं सनत्कुमार सनातन सनक सनन्दन और चंद्रवंश में भक्तों के लिये अवतार है जिन्होंका ऐसे जो श्रीकृष्णचंद्र वसुदेवजीके नंदन उन्होंको मैं वंदन करताहूं हे अमरवर! आपके गुणोंके अंतका नहीं जाननेवाला ॥

टी० । परमेश्वरके गुण दो प्रकारके हैं प्रथम में दो भेद हैं ऐसे जैसे अज अव्यक्त अद्वैत अमरादि जो निषेध करके कहे जाते हैं दूसरे सत् चित् आनन्दादि जो प्रतिपादन करके कहे जाते हैं और दूसरे राम कृष्णादि सगुण ब्रह्म के गुण श्याम शांताकार करुणाकर भक्तवत्सलादि ॥

सू० । जो नर उसकी स्तुति जो आपके सदृश न हो तो क्या आश्चर्य्य है क्योंकि ब्रह्मादिकी भी स्तुति आपके सदृश नहीं है और जो यों कहो यथामतिस्तुति करनेवाले सब निर्दोष हैं तो हे दीनार्तिहर! मेरा जो इस आनन्दामृतवर्षिणीके लिखनेमें यो परिकर सोभी निर्दों-

षहै हे भगवन्! आपकीमहिमा मनवाणीका तो विषय नहीं है और वेदभी अतद्व्यावृत्तिकरके चकितहुये आपकी महिमाकूं कहते हैं सो॥

टी०। अतद्व्यावृत्तिका अर्थ यों है कहेकूं आवृत्ति विशेष कहेकूं व्यावृत्ति औ अतत् के बारम्बार कहेकूं अतद्व्यावृत्ति कहते हैं अतत् का अर्थ यों हैनहीं है तत् सो नहीं है तत्ब्रह्म कूं कहते हैं तात्पर्य यो है श्रुतिने कहकहकर जो निषेध किया है सो नहीं है इसीकूं अतद्व्यावृत्ति कहते हैं शास्त्र की रीति से अतत् का अतद् बोलाजाता है॥

मू०। महिमा किसके स्तुति करने योग्यहै और आपके कितने गुणहैं यों कौन कहसके फिर आप किसका विषय होसक्तेहैं परंतु अर्वाचीन पदके अर्थात् अवर पदके॥

टी०। जिस करके जानाजावे उसको पदकहते हैं ब्रह्मके दोपदहैं एक अवर अर्थात् उह्लासगुण दूसरा पर अर्थात् परब्रह्मनिर्गुण॥

मू०। विषयमें किसकामन नहीं लगताहै और किसकी बाणी यों नहीं चाहतीहै कि परमेश्वरका कीर्तनकरना चाहिये परन्तु बिना आत्महत्यारेके संसारमें तीन प्रकारके पुरुषहैं मुक्त १ मुक्तिकी इच्छावाले २ विषयी ३ मुक्त तो शुक सनकादिज्ञानीजन सदा आपके गुणोंकाकीर्तन करते रहते हैं मुक्तजन ब्रह्मानन्द कूं अनुभव करते हुये स्मरण करते हैं कि यों ब्रह्मानन्द परमेश्वरकी कृपा है और मुक्तिकी इच्छावालों कूं संसाररूप रोगकी योंहीं परमेश्वर का कीर्तन करना परम औषध है २ और बि-

षयीजनों कूं आपके चरित्र विहारादि परमप्रिय लगते हैं हे भक्तप्रिय ! बृहस्पतिआदिकी जोस्तुति क्या आपकूं आश्चर्य्य है तात्पर्य्य कुछ आश्चर्य्य नहीं है क्योंकि समस्त परम अमृत रूप मधुर कोमल कोमल वाणी सब आपहीकी कहानीहैं और जो यों कही फिर तुम्हारी वाणी क्या आश्चर्य्य होगी हे परमेश्वर ! मेरी बुद्धिमें तो यो अर्थ निश्चय कियाहै अपनी वाणीकूं आपके गुणोंका कथन करके पवित्र करताहूं प्रार्थना यों है हे कृष्णचन्द्र ! मेरी यों बालक कीसी हठ जानकर आपने सर्व प्रकार क्षमाकरनी ग्रन्थ के आदि मध्य अन्त में निर्विघ्न समाप्ति के लिये और आस्तिक मार्ग प्रवृत्तिके लिये शिष्टाचारानुमित्त और श्रुति बोधित जो तीन प्रकारका मंगल नमस्कार आशीर्वाद वस्तु निर्देशहोताहै सो यहां तक मंगलाचरण है ॥

विद्वज्जनों से प्रार्थना यों है जो यो मेरी भाषा में लिखा है जो श्रुति स्मृति वेदान्त शास्त्रसे विरुद्ध हो तो अंगीकार नहीं करना और जो किसी जगह प्रकरण संगति पुनरुक्तिआदि दोष प्रतीत होतेहों तो बनादेने और जो यो भाषा अच्छी न होवे और तात्पर्यवक्ताका भले प्रकार न प्रतीत होताहो तो जैसी विद्वान् पसन्द करें वैसीही लिखदेनी और परमेश्वर के स्वरूपका जो इसके विचारने में चिंतवन करने में आता है इस गुण करके अंगीकार करना योग्यहै कुछ वाणी की चतुराई तो इसमेंहै नहीं और जो कहीं बुद्धि के भ्रमसे अन्यथा लिखागया हो उसको बनादेना तत्पर्य्य सबप्रकार आप

को भी क्षमा करनी योग्यहै मेरे अभिप्रायकूं विचारना
चाहिये बक्ताका इसके लिखने में क्या अभिप्राय है सो
सुनो मैंहीं लिखे देताहूं श्रीकृष्णचन्द्र ने गीताशास्त्र में
कहा है इस गीताशास्त्रकूं जो मेरे भक्तोंकूं धारण करा-
वेगा तो मेरेविषे परम भक्ति करके मुझकूं प्राप्तहोवेगा
और स्वामी विद्यारण्यभारतीतीर्थजी ने पञ्चदशीमें कहा
है किसी उपाय करके ब्रह्मका सदा चिन्तवन करना जो
एकान्त में बैठना तो ब्रह्महीका चिन्तवन करना और जो
दूसरेसे परस्पर बातकरनी तो ब्रह्महीकी करनी और जो
किसीकूं कथन करना तो ब्रह्महीका करना यों जो एक पर
होनाहै इसीकूं विद्वान् ब्रह्माभ्यास कहतेहैं सो मुझकूं यो
उपाय ब्रह्मकेचिन्तवन करनेका अच्छा प्रतीत होताहै ॥
मू०। पञ्चदशी वेदान्तसार तत्त्वानुसन्धान श्रीभग-
वद्गीताटीका सहित और आत्मबोधादि पोथी समीप
रखकर जितनी मेरी बुद्धि थी उन्होंकूं विचार विचार जो
सीधा खुलासा अर्थ बालकों की समझमें आवे सो अर्थ
आनन्दामृतवर्षिणीमें लिखा है बुद्धिमान् से इस आन-
न्दामृतवर्षिणीकूं एक बेर श्रद्धा भक्तिकरके और चित्तकूं
एकाग्र करके कुतर्क के बिना सद्गुरु से जैसे गुरु वेद
गीतामें लिखेहैं तात्पर्य्य वेदशास्त्र के तात्पर्य्यकूं जानने
वाले और ब्रह्मनिष्ठ उन्हों से सुनना योग्य है जो केवल
वेदशास्त्रार्थ के जाननेवाले हैं और ब्रह्मनिष्ठ नहीं वे
विज्ञान अनुभव नहीं कहसकेंगे और जो केवल ब्रह्मनि-
ष्ठहैं वे युक्ति दृष्टांत शंका समाधान पूर्वक नहीं कहसकेंगे
इसलिये वेदशास्त्रार्थ के जाननेवाले और ब्रह्मनिष्ठ गुरु

वाले सुनना योग्य है जो इसमें अनुष्ठान कहा है उसकूं सुननेवाले की इच्छा हो करो वा मत करो तात्पर्य यों है जो सुनेगा तो अपने आनन्दके लिये आपही अनुष्ठानकरेगा दृष्टांत कहतेहैं एक राजाथा कभी पंडितों कूं कुछ न देताथा न कभी कथा सुनताथा किसी विद्वान्ने सब पण्डितों से कहा कि तुम राजासे कहो हे राजन् ! आप हमारी कथासुनो धन दो वा न दो पण्डितोंने कहा महाराज वृथा अनधिकारीसे कौन माथा मारे प्रयोजन के बिना तो मन्दभी नहीं प्रवृत्त होताहै विद्वान्ने उन्हों कूं दृष्टांत दिया जो केलीगेह की देहलीमें तरुणस्त्री दूध पीहुई किसी प्रकार प्राप्त होजावो फिर मैथुनकी इच्छा करो वा मत करो अब दृष्टांत और दार्ष्टांत विचारो कथा ओ राजा पाषाणहै जो पण्डितोंकी कथा सुनकर मुक्तिके लिये धर्म दानादि नहीं करेगा और क्या वो स्त्री पत्थर है कि उसकूं ऐसी जगह अपने आनन्द के लिये कामका आविर्भाव नहीं होगा ऐसेही क्या इसग्रंथका सुनने वाला पाषाण है जो निरतिशय आनन्दके लिये अनुष्ठान न करेगा॥

टी०। जिससे सिवाय और किसी जगह ब्रह्मलोकादि में आनन्द नहीं॥

सू०। जो अर्थ इस आनन्दामृतवर्षिणी में लिखना है उस की संगतिके लिये जहां यों लिखेंगे प्रथम ज्ञान के चार साधन हैं यहां तक उपोद्घात कथाहै सो सुनो॥

टी०। वांछित अर्थ कूं मन में रखकर प्रथम और प्रसंग कहना॥

मू० । जो एक चैतन्य महानंद शुद्धब्रह्म नित्यमुक्त सो मायोपहित हुआ ईश्वर १ और ओही चैतन्य समष्टि सूक्ष्म उपाधि करके उपहित हिरण्यगर्भ २ और वोही चैतन्य समष्टि स्थूल उपाधि करके उपहित विराट् ३ इन तीन भावोंकूं प्राप्त होता भया और ओही चैतन्य अविद्योपहित हुआ प्राज्ञ १ और व्यष्टि सूक्ष्म उपाधि करके उपहित तैजस २ और व्यष्टि स्थूल उपाधि करके उपहित विश्व ३ इनतीन भावों कूं नानाप्रकार का जीव होता भया फिर ईश्वर जीवोंके धर्म अर्थ काम मोक्ष के लिये सृष्टि स्थिति संहार कूं करते भये धर्मादि में मोक्ष मुख्य है और तीनि धर्मादि गौणहैं और धर्मादि तीनके दो दो फलहैं मुख्यफल परम्परा करके तीनोंका मोक्षहै और स्वर्गादि गौण हैं धर्मका मुख्य फल मोक्ष है और स्वर्गादि गौणहैं स्वर्गादि फल जो वेदोंमें कहे हैं वे ऐसे हैं जैसे बालककी शोभाके लिये कानछेदन कराना और मोदकादिको फल कथन करदेना अभिप्राय तो उन्हों का जोहै सो है श्रुति माताके सदृश हित ॥

टी० । परिणाम अन्तमें सुखहो जिसके ॥

मू० । चाहनीवाली है जैसे किसीका पुत्र रास्तेकी मृत्तिका खायाकरताथा उसकी माता ने उसकूं बहुत बरजा उसने न माना हारकर माताने कहा हे पुत्र ! यों गंगाजीकी मृत्तिका खायाकर बहुत सुन्दर है विचारो माता का अभिप्राय गङ्गाजीके मृत्तिका के खिलाने में नहीं है रास्तेकी मृत्तिकाके बर्जने में उसका अभिप्राय है ऐसेही वो मूर्ख जीव रास्ते की मृत्तिकाकी नाई शब्दादि विषयोंकूं

इष्ट जानता है श्रुति ने यों समझा इन विषयों से तो स्वर्गादि अच्छे हैं तात्पर्य्य तो श्रुतिका मुक्ति में है इसी हेतु से मोक्ष मुख्य है और उपासना इसलियेहै किसी का पुत्र जगह जगहहूथा फिरताथा समेसिर नहीं हाथ आता था उसके पिता ने विचार कर पुत्रसे कहा कि तू इस मकान पर बैठारहाकर कुछ उसकूं लालच देदिया तात्पर्य जब काम पड़ैगा यहांसे बुलालूंगा वैसेही यो मन कहीं यज्ञदानादि के फल स्वर्गादि में कहीं शब्दादि विषयों में मृगतृष्णावत् भूला भागाभागा फिरताथा कभी श्रम नहींहोताथा जो आत्मस्वरूप का विचार करे इसलिये श्रुतिमें एकाग्रचित्त के लिये उपासना कही है विचार देखो एकाग्रचित्त के बिना श्रवण मनन निदिध्यासन ये जो मुख्यसाधन मुक्तिकेहैं सो नहीं हो सक्ते हैं १ इसी प्रकार अर्थ जो अशरफ़ी रुपयादि करके जगत्में प्रसिद्ध होना और जगत्के सुख सम्पादन करने गौण हैं और रुपयादि खर्च करके धर्म्म करना कथा श्रवणकरना सन्तोंका सङ्गकरना तीर्थोंका सेवन करना मुख्यफल उन्होंका भी परम्परा करके मोक्षहै २ ऐसेही काम अपने सुखके लिये खानापीना और आनन्दके लिये स्त्रीका सङ्ग और स्थान वस्त्रादिमें जो सुख बुद्धि सो गौण और भोजनादि वास्ते धर्म के और श्रवणादि के लिये शरीर की रक्षा करनी और स्त्रीका सङ्ग वास्ते पुत्रकी उत्पत्तिके वो भी किसी अंशमें मुक्तिका हेतु है इसका भी परम्परा करके मुख्यफल मोक्षहै ३ तात्पर्य्य संसारमें पुरुषार्थ मुख्य मोक्षहै वे जो अविद्योपहित

जीव उन्हों मेंसे श्रुतिस्मृति जो परमेश्वर की आज्ञा है उन्होंकूं जो करते भये उन्हों की उपासनाके लिये जैसी उन्होंकूं मूर्त्ति परमेश्वर की वांछित हुई वेही मायोपहित ईश्वर ब्रह्मा विष्णु महेशसूर्य शक्ति गणेशादि मूर्तिकूं धारण करतेभये सो मूर्त्ति कैलास वैकुण्ठादिमें और भक्तों के हृदयमें सदा बास करती रहती है वे जो विष्णु भगवान् हैं सो भक्तोंके उद्धारके लिये जो ऐसे भक्त हैं कि सदा जो परमेश्वर की आज्ञा उसकूं करके शुद्ध कियाहै अन्तःकरण जिन्होंने और शम दमादि साधनों करके युद्ध मोक्षकी इच्छावाले परन्तु बहुत गम्भीर जो ऋग् यजुस्साम अथर्व्वण वेद उनके बिचारने में असमर्थ और बिना विचारके ज्ञान नहींहोताहै जैसे पदार्थका भानु बिना प्रकाशके इसलिये उनकूं ब्रह्मतत्त्व विचारनेके लिये श्री कृष्णचन्द्र अवतार लेकर चारों वेदोंका अर्थ जो कि मुख्य मोक्षका साधन है अर्जुन के निमित्त करके गीता शास्त्र रचतेभये और वेही विष्णु व्यासदेव अवतार लेकर भागवतादि पुराण भारतादि इतिहास रचतेभये जिन्होंमें कर्म उपासना ज्ञान तीनों हैं प्रसंगसे गीताकूंभी महाभारत के बीचमें लिखा और जो वेदान्त वेदोंका सिद्धान्त जिसकूं वेदोंका मस्तक कहतेहैं उस सिद्धान्तकूं फिर सूत्रों में कथन करतेभये तात्पर्य्य कई कई श्रुतियोंका अर्थ एक एक सूत्रमें संक्षेपकरके कहा वेजो सूत्र और गीता शास्त्र उनका जो अर्थ सोभी बहुत गम्भीर और परमेश्वर का अभिप्राय परमेश्वर जानैंया जिसपर उनकी कृपाहो वो जानै पीछे उनके कलियुगके जीवनने हठकरके पण्डिताईके बल

से अपने अपने मतमें व्याससूत्र और गीताजीका अर्थ बनालिया जो अभिप्राय श्रीकृष्णचन्द्र और व्यासदेवजी का था वह सिद्ध न हुआ ज्ञानकाण्ड जो साक्षात् मुक्तिका हेतुथा लोपहोगया तब सब देवता विष्णु ब्रह्मादि जुर-कर श्रीमहादेवजी के पास गये सारी व्यवस्था कही। महादेवजीने कहा हम वेदमार्गकी प्रवृत्ति के लिये अ-वतारलेंगे आप भी सब ब्रह्मा इन्द्रादि अवतारलो फेर महादेवजी महाराज तो श्रीशंकराचार्य्य नाम करके और विष्णुजी सनन्दन नाम करके और ब्रह्माजी मण्डनमिश्र नाम करके सरस्वतीजी के सहित और इन्द्र सुधन्वा राजा नाम करके तात्पर्य्य इसी प्रकार बहुत देवता अ-वतार लेतेभये क्योंकि जब ज्ञानकाण्ड का लोप हो-ताहै तब महादेवजी अवतार लिया करते हैं और सब मतवालों से शास्त्रार्थ करके सब झूंठे मतों का ख-ण्डन करके जो सार सिद्धान्त वेद भगवान् का है उसकूं स्थापन किया करते हैं राजाका अवतार इसलिये हुआ जो शास्त्रार्थमें झूंठी कुतर्क और हठ करेगा और शास्त्रार्थ होकर उसका मत खण्डन होजावे फिर दुराग्रह से न माने अथवा बहुत जुरकर सामना करें तो राजा उनकूं दण्ड देंगे पीछे अवतारसे ५। ६ वर्षकी अवस्थामें श्रीशंक-राचार्य्यजी ने संन्यास लेकर १६ वर्ष की अवस्था में १६ भाष्य रचे १० उपनिषद् पर ११ भाष्य व्याससूत्रों पर एक शारीरक भाष्य विष्णुसहस्रनामभाष्य गीता सनत सुजात भाष्य नृसिंहतापिनी भाष्य तात्पर्य्य उप-निषद् गीतादिका अर्थ भलेप्रकार श्रुति स्मृति युक्ति

दृष्टांत प्रमाण देदेकर सिद्ध किया और जो गीताभाष्या दि के विचारनेमें असमर्थ देखे उनके लिये आत्मबोधा-दि छोटे छोटे प्रकरणोंमें वोही अर्थ संक्षेपकरके लिखते भये फिर सब वादियों कूं शास्त्रार्थ में जयकरके दिग्वि-जय करतेभये जो वेदोंकासार सिद्धांत तथा उसकूं प्रकट प्रचार करते भये ऐसा ऐसा शास्त्रार्थ हुआ चालीस दिनतक मण्डनमिश्र से चरचा रही मण्डनमिश्र की स्त्री सरस्वतीजीका अवतार साक्षीथी उसने पुष्पों की माला दोनों के गलेमें डालदीथी कहदिया था जिसकी माला सूखेगी वोही हारेगा चालीस दिन केपीछे मण्डन मिश्रकी माला सूखगई इसीप्रकार बहुत जगह शास्त्रा-र्थ हुआ और चारोंदिशा में महाराज गये उनके अब-तक ज्योयशी आदि मठ चारोंदिशा में विद्यमान हैं और कपालीआदि ने जो सामनाकिया वे कुछ महारा-जने मंत्रों से मारे कुछ राजा ने मारे, विस्तार इस कथा का तीन दिग्विजय ग्रन्थ हैं उनमें बहुत है तात्पर्य यों है जो अच्छे बुद्धिमान् हैं उनके लिये तो शारीरक भा-ष्यादि बड़े २ ग्रन्थ रचे और जो मन्दबुद्धि हैं उनके लिये आत्मबोधादि छोटे २ प्रकरण रचकर ३२ वर्षकी अवस्था में महाराज तो कैलास कूं जाते भये फिर जो पद्मपदादि महाराज के मुख्य शिष्य थे उन्होंने भी बहु-त ग्रन्थ रचे स्वामी आनन्दगिरिजीने तो सब भाष्यादि ग्रन्थोंपर टीकाकरी और सुरेश्वराचार्य महाराजने वा-र्तिक बनाया पीछे उनके स्वामी शंकरानन्द भगवान् और विद्यारण्यादिजी ने आतमपुराण और पंचदशी वेदान्त

सारादि बहुत सहस्राणि ग्रन्थ रचे वे ग्रन्थ अबतक तो परमेश्वरकी कृपासे सूर्यवत् इसलोक में प्रकाश रहेहैं ॥

अब इस समयमें ऐसे जो परमेश्वरके भक्त कि जिन की गुरु परमेश्वरमें श्रद्धा भक्ति और उनकी यथाशक्ति आज्ञा करनी परंतु आत्मबोधादिप्रकरणों के विचारने में भी असमर्थ उनकूं सुखपूर्वक ब्रह्मतत्त्व विचारने के लिये और मुख्य मुंशीबंशीधरजी कायस्थ भटनागर रहनेवाले श्रीगंगा यमुनाजीके मध्यमें इन्द्रप्रस्थसे २२ कोश पूर्वदिशामें श्रीकन्दरापुरी प्रसिद्ध सिकन्दराबादके लिये कैसे हैं वे मुंशीसाहब कि जिन्होंके रूप लक्ष्मी विद्या तेज हुक्म और साम दाम क्षमा औदार्यादि बहुत गुण करके युक्त पतिव्रता स्त्री फिरयो आश्चर्य कि ऐसे समय में सत्संगी परमेश्वरमें भक्ति गंभीरादि गुणकरके युक्त तात्पर्य ऐसे सज्जन बुद्धिमान् इस समय में होने कठिनहैं जिनकूं व्यवहार में राज और परमार्थ में विद्वान् सराहना करतेहैं उनकी श्रद्धा भक्तिपूर्वक प्रार्थना से उनके उपवन अन्तर्गत मकान कोठी में ठहरकर और श्रीस्वामी आत्मागिरिजी महाराज रहनेवाले प्रथम गुजरातके जिनकूं वेदान्तशास्त्र का अर्थ करामलकवत् है उनके सहायसे श्रीमत्परमहंस परिव्राजस्वामी मलूकागिरिजी महाराजका अनुचर शिष्य स्वामीजी के चरणकमलोंका पूजनेवाला मैं आनंदगिरि इस आनन्दामृतवर्षिणीका बनानेवाला स्वामीजी और श्रीकृष्णचन्द्र महाराज की कृपासे आत्मबोधादि छोटे छोटे प्रकरणों में जो मैंने अर्थ सुना है उसमें से भी स्वल्प यथामति

और श्रीमद्गीताका भी अर्थ किसी किसी जगह इस आनन्दामृतबर्षिणी में लिखूंगा॥

प्रथम ज्ञानके मुख्य चार साधनहैं उनकूं लिखतेहैं॥

विवेक १ वैराग्य २ शमादि षट्सम्पत्तिः ३ मुमुक्षुता ४ अर्थ इनका यों है॥

इस संसारमें नित्य अनित्य क्याहै और विचार करते करते यो निश्चय करना कि आत्मा नित्य और आत्मा से पृथक् सब अनित्यहै १ यहांके देखे सुने जो पदार्थ स्त्री चन्दनमालादि परलोकके जो सुने अमृत नन्दनबन देवांगनादि सबकूं अनित्य दुःखदायी जानकर मनकी इच्छापूर्वक सबकूं त्यागदेना फिर उनमें दीनता न होनी ब्रह्मलोक कूं तृणवत् जानना २ तीसरे में ६ भेद हैं शम १ दम २ उपरति ३ तितिक्षा ४श्रद्धा५ समाधान६ इनका अर्थ यों है मनआदि अन्तःकरणकी संकल्पादि वृत्तियों कूं रोकना वेदान्तशास्त्रके श्रवण मनन निदिध्यासन के बिना ३ श्रोत्रादि इन्द्रियों कूं शब्दादि विषयों से रोकना देहयात्रा और श्रवणादि के बिना २ यम नियमादि साधनों से अन्तःकरण कूं निरोध करके॥

टी०। अहिंसा १ चोरी न करनी २सत्य बोलना ३ ब्रह्मचर्य्य ४अपरिग्रह अर्थात् शरीरयात्रा से सिवाय संग्रह न करना ५ इन पांचका नाम यमहै॥

और शौच १संतोष २तप ३ स्वाध्याय अर्थात् प्रणवका जप ४ ईश्वर प्रणिधान अर्थात् परमेश्वर में भक्ति ५ इन पांच का नाम नियमहै॥

म०। सब लौकिक वैदिक कर्मों से उपराम होना ब-

ह्मतत्त्व बिचारने के लिये देहयात्रामात्र क्रिया करनी और जाग्रत् अवस्था सुषुप्तिवत् रहनी इसीका नाम उपरतिहै ३ श्रवणादिमें जो जो दुःखसुख पड़े सबकूं सहजाना ४ जो वेदान्तशास्त्र और गुरुज्ञान के देनेवाले कहते हैं उन में विश्वास करना कि इसी प्रकारहै ५ श्रवणादि के समय भलेप्रकार चित्तकूं समाधान करना ६ तीसरे साधनके भेद होचुके चौथे साधनका यों अर्थ है मुक्तिको मुख्य पुरुषार्थ समझकर मुक्तिकी नित्य इच्छा रखनी ॥

मुक्तिके ये चार साधन मुख्यहैं और सब साधनोंका इनमें अन्तर्भावहै जो इनका भलेप्रकार अनुष्ठानकरे तो और किस साधनकी अपेक्षा नहीं है सब साधनोंका यों तन्त है ॥

ग्रंथमें जो चार अनुबन्ध होते हैं उनकूं लिखतेहैं ॥

अधिकारी १ विषय २ सम्बन्ध ३ प्रयोजन ४ इनहीं चार साधनों करके जो सम्पन्न सो इस ग्रंथके पढ़ने सुनने का अधिकारी १ जीवन ब्रह्मकी एकता इसमें विषयहै २ यो ग्रंथबोधक और ग्रंथबोध्य इन दोनोंका बोध बोध्यक भाव इसमें सम्बन्ध है ३ सब शोक दुःखों की निवृत्ति और परमानन्द की प्राप्ति जिसकूं मोक्ष कहतेहैं यों इस का प्रयोजन है ४ इसमें दृष्टांत यों है जैसे रसोई में अन्नका भूखा तो अधिकारी १ और जो अन्न में मधुरादि स्वादुहैं सो विषय २ और अन्न वर्तनादि का संयोग सम्बन्ध ३ भूखका दूर होजाना प्रयोजन ४ जो कोई कहे तुम ब्रह्म २ कहतेहो दिखाओ आपका ब्रह्म कहां और

कैसाहै जैसे नास्तिक केवल प्रत्यक्षप्रमाण मानता है यो बात मूर्खताकी है सोई सुनो जैसे किसी वस्तुके सद्भाव में एक प्रत्यक्षप्रमाण है ऐसे और भी अनुमानादि प्रमाणहैं प्रथम तो प्रत्यक्षप्रमाण दो प्रकारका है बाहर १ भीतर २ बाहर ज्ञानेन्द्रियों करके शब्दादि बिषयों का और पंचभूतों का ज्ञान होताहै परन्तु नेत्र करके तो रूप और पृथ्वी जल तेजकाही ज्ञान होताहै और रूपके बिना शब्दादि चार बिषयोंका और वायु आकाश का नेत्रसे ज्ञान नहीं होताहै १ और भीतर दुःख सुख भूख शोकादिका ज्ञान अन्तःकरण करके होताहै और सुषुप्ति में जो अज्ञान उसका ज्ञान साक्षी चैतन्यकरकेहोताहै उस पूर्व पक्षी से बूझना चाहिये कि दुःखसुखादि जिसकूं होते हैं क्या वो नेत्रसे दिखासक्ताहै और जो कहे कि दुःखादिकूं नेत्रसे कौन दिखासके तो हम कहते हैं ब्रह्मकूं नेत्रसे कौन दिखासके और श्रीकृष्णचन्द्रादि जो मूर्ति हैं वे मायामय मूर्ति हैं क्योंकि यो वेदशास्त्रों का सिद्धांत है किजो दृश्य है सो अनित्य है (गोगोचर जहँलगि मन जाई॥ सो सब माया जानो भाई) जो उन मूर्तियों कूं कोई परमार्थ से सच्ची कहे तो वे मूर्ति अनित्य हैं परमेश्वर कूं वेदशास्त्र नित्य कहते हैं तात्पर्य परमेश्वर वास्तव अमूर्तहैं जैसे दुःखादि अंतःकरण करके जानेजाते हैं ऐसे सूक्ष्मदर्शी पुरुषों कूं सूक्ष्मबुद्धिकरके अंतर्मुखवृत्ति करके और प्रत्यक्षादिप्रमाणकरके प्रमेय चैतन्यका अपरोक्ष होसक्ताहै वेदांतशास्त्रमें ६ प्रमाणहैं प्रत्यक्ष १ अनुमान २ उपमान ३ शाब्द ४ अर्थापत्ति ५ अनुपलब्धि ६ इन

का अर्थ भाषामें भलेप्रकार लिखनेसे बहुत बिस्तार होताहै इसलिये नाममात्र रस्ता दिखाते हैं प्रत्यक्षका अर्थ तो पीछे लिखागया अनुमान से इस प्रकार ॥

टी० । अनुमानके पांच अंगहैं पक्ष्य १ साध्य २ हेतु ३ व्याप्ति ४ दृष्टांत ५ इसलिये पांच वायवी अनुमान कहा जाता है जैसे पक्ष्य १ कि यो पर्वत साध्य २ अग्निवालाहेतु ३ धूम होने से-व्याप्ति ४ जहां जहां धूम होत है वहां वहां निश्चय अग्नि होती है-दृष्टांत ५ जैसे रसोई के मकानमें ॥

मू० । ज्ञान होता है कोई मनुष्य जंगल में चला जाता है अग्निकी इच्छा हुई देखा पर्वत में धूम उठरहा है वो अनुमान करता है वो पर्वत अग्निवाला है धूम होने से जहां जहां धूम होताहै वहां वहां निश्चय अग्नि होती है जैसे रसोई के मकान में विचार देखो अग्नि प्रत्यक्ष नहीं है परंतु पर्वत में अग्निका होना प्रमाण है २ उपमा करके इसप्रकार ज्ञान होताहै गवय एक पशु होताहै एक पुरुषने उसकूं कभी नहीं देखाथा नाम सुनाथा उसने किसी जंगली आदमी से पूछा कि गवय कैसा होता है जंगलीने उत्तर दिया कि गौकी सदृश होताहै कुछ एक अन्तर होताहै वो पुरुष एक दिन जंगल में गया उसने गवय कूं देखा उस गवयकूं देखकर उस बातको स्मरण किया कि गौ की सदृश होताहै निश्चय योही गवयहै विचार देखो गवयका जानलेना प्रमाण है ३ शाब्दप्रमाण दो प्रकारका है वैदिक १ लौकिक २ वेदोंने जो कहा सो वैदिकप्रमाणहै जो यों शङ्काकरे कि वेदोंने तो

जीव ईश्वरका भेदभी कहा है और अनेक श्रुति कर्म उपासनादि करके मोक्षका होना कहती हैं और बहुत श्रुति अन्नमयकोशकूं आत्मा कहती हैं तो यों वेदों का कहाहुआ आपके प्रमाण है या नहीं इसका उत्तर यों है जो श्रुति अन्नमयादि कोशकूं आत्मा कहती हैं और जो कर्म उपासनादि करके मुक्तिका होना कहती हैं सबका अभिप्राय युक्तिसे अद्वैत ब्रह्मके बोधन करनेकाहै देहादिकूं परमार्थसे आत्मा कहना और जीव ईश्वरका भेद कहना और केवल कर्म उपासनादिसे मुक्ति का होजाना यो श्रुतिका तात्पर्य्य नहीं है क्योंकि फिर श्रुतिने निषेधभी किया है कि यो नहींहै २ इस वाक्यकरके और बहुत सहस्राणि ऐसी ऐसी अर्थवाली श्रुतिहैं और जो यो शङ्का करे कि प्रथम श्रुतिने देहादिकूं आत्मा कहा और जीव ईश्वर का भेद कहा फिर उसकूं निषेध किया प्रथमही एक निर्गुण ब्रह्मका उपदेश क्यों न किया इसका उत्तर यों है जो श्रुति प्रथम ही ब्रह्म को बोध न करती तो ब्रह्मकूं अति सूक्ष्म होने से इस जीवकूं ब्रह्मका कभी बोध न होता इसलिये श्रुतिने क्रमसे अर्थात् प्रथम कर्म्म करना कहा फिर उपासना कही और प्रथम अन्नमयादिकूं आत्मा कहा फिर आनन्दमयकोशकूं आत्मा कहा जब जिज्ञासुकी बुद्धि आनंदमयादिकूं विचारते विचारते अतिसूक्ष्म हुई तब निर्गुणब्रह्मका उपदेश किया अब विचारो कि श्रुति का अन्नमयकोशादिकूं जो आत्मा कहना है और कर्म उपसना से मुक्तिका होना यों परमार्थ में तो सच्चा नहीं परन्तु निर्गुणब्रह्मकूं साक्षात् बोधन करनेवाली जो ब-

हुत श्रुति हैं उन्हों की यह सब श्रुति उपयोगी हैं इसलिये वेदका कहाहुआ सब प्रमाण है कोई श्रुति साक्षात् और कोई कर्म्म उपासनादिद्वारा परम्परा करके बोधन करती हैं मूर्खलोग वेदों के तात्पर्य कूं नहीं विचार के एकएकदेश वेदोंका सुनकर कोई देह कोई इंद्रिय कोई विज्ञानमय कोशादिकूं आत्मा बताते हैं कोई केवल कर्म से कोई केवल उपासनादि से मुक्तिका होना कहते हैं समस्त वेदों का तात्पर्य नहीं विचारते पूर्व पक्ष की श्रुतियों कूं प्रमाण देदे वृथावाद करते हैं जैसे कोई मूर्ख अच्छे वैद्यके समीप बैठाथा उस समय एक पुरुष आया उसकूं बहुत चलने से हारपन का ज्वरथा वैद्यने नाड़ी देखकर कहा कि मोहनभोग खाओ ज्वर जातारहैगा उसकूं हारपनसे ज्वर था मोहनभोग के खाने से जातारहा उस मूर्ख ने समझा कि विशेष करके धनवाले बीमार होते हैं उनके लिये यो औषध बहुत सुन्दर है ऐसा निश्चय करके सब रोगियोंकूं मोहनभोग बताने लगा जिसकूं हारपन का ज्वर होवे तो अच्छा होजावे शेष मरजावें ऐसेही बहुत मूर्ख एक एक दो दो औषध वैद्यसे सुनकर वैद्यक करने लगे न वैद्यके तात्पर्यकूं विचारा न रोगी के रोगकूं विचारा सबकूं एकही औषध बताने लगे दैवयोग से कोई कोई अच्छा भी होजावे इसी प्रकार मूर्खने वेदके तात्पर्यकूं न अधिकारीकूं विचारते हैं केवल आजीविकाके लिये वैष्णव शैव शाक्तादि अपने अपने मतका उपदेश करके कह देते हैं कि योही परमतत्त्व है औरों की असूया करदेते हैं विचारो कि जो सबकूं एक देवताका उपदेश करते हैं तो क्या सा-

री अवस्थामें सबके एकही गुण सदा रहता है इस दृष्टां तकूं भले प्रकार विचारो वैद्य तो सद्गुरु की जगह कि जैसे प्रथम अध्याय में लिखे हैं और वैद्यककी पोथी वेद और शास्त्रोंकी जगह और रोगी मुमुक्षु की जगह क्योंकि तीन प्रकार का रोगहै कफवायु पित्त और तीनहीं रोग इस जीवकूं हैं सत्त्वरजतमोगुण तमोगुणीके लिये कर्म रजोगुणीके लिये उपासना सत्त्वगुणीके लिये ज्ञान वेदोंने कहाहै और उस मूर्खकी जगह इस कलियुग के ऐसे गुरु कि जो विना वेदान्तशास्त्र के पढ़ेहुये और विना वेदशास्त्रोंका तात्पर्य जानेहुए मूर्खोंकूं चेला करते हैं उनकूं केवल अपनी क्षमाहीसे प्रयोजन है शिष्य दुःख भोगो या नरक भोगो सो शिवजीने पार्वतीजी से कहा है॥

श्लोक। गुरवोबहवःसन्ति शिष्यवित्तापहारकाः॥
दुर्लभःसगुरुर्देवि शिष्यसन्तापहारकः १

तात्पर्य वेद भगवान्का यों है जैसे व्यवहार में मनुष्य सूक्ष्मवासकूं युक्ति करके कहते हैं ऐसे वेद भगवान् भी निर्गुणब्रह्मकूं युक्ति करके बोधन करते हैं इस बात के स्फुट होने में मनुष्यों की युक्तिकूं लिखते हैं शारीरकभाष्य में अस्थूलारुंधती न्याय नाम करके यों युक्ति लिखी है कुमारी लड़कीकूं सौभाग्य के अर्थ अरुंधती का दर्शन कराया करते हैं प्रथम उससे कहते हैं कि यो चन्द्र अरुंधती है जब वो चन्द्रकूं जानजाती है फिर कहते हैं कि यो अरुंधती नहीं है यह साततारे अरुंधती हैं फिर वैसेही निषेध करके कहते हैं कि यह तीन तारे हैं फिर उन तीन तारोंमें से वशिष्ठजीकूं अरुंधती

बताते हैं जब वो लड़की वशिष्ठजीकूं भलेप्रकार जानजा-
ती है पीछे उसकूं भी निषेध करके कहते हैं कि उस तारे
के समीप जो बहुत सूक्ष्म ताराहै सो अरुंधती है जिस
के भाग्य अच्छे होते हैं उसको अरुंधती का दर्शन हो-
जाता है अब विचारना चाहिये कि प्रथम चन्द्रादिकूं
अरुंधती कहना है उनका अरुंधतीके बताने में सब वा-
क्य उपकारी हैं इसलिये सब प्रमाण हैं जिस काल में
वो लड़की अरुंधती को जानजातीहै पीछे उनकूं यों नि-
श्चय होजाती है कि मेरेमाता पिताने जो प्रथम चन्द्रा-
दिकूं बताया था तात्पर्य उन का अरुंधती के बोधन कर
ने में था दार्ष्टान्तमें फिर भलेप्रकार विचारना चाहिये
योंतो वैदिकप्रमाण कहा और लौकिक व्यास वशिष्ठ आ
प्तकामादि पुरुषों का जो कहा है सो प्रमाण है लौकिक
प्रमाणमें भी वोही अरुंधती न्याय है इस समयमें भी
आप्तकाम ब्रह्मवादी परमहंस संन्यासी विशेष करके हैं
और जो इसलोक में अच्छे गुण कहेजाते हैं कि जिनकूं
सब मतवाले अङ्गीकार करते हैं और वेद वशिष्ठादि का
परम सिद्धान्त हैं और मुक्ति के मुख्य अंतरङ्ग साधनहैं
निराकांक्ष शान्ति निरहंकार सन्तोष कोमलता विवेक
वैराग्य निर्वैरता अमान परोपकार क्षमा शम दमादि ऐसे
ऐसे गुण और विद्या और विज्ञान विशेष करके ब्रह्मवा-
दी संन्यासी परमहंसोंही में पाते हैं इसलिये उनकूं आ-
प्तकाम होनेसे उनके वाक्य प्रमाण हैं ४ किसीसे बूझा
कहोजी भोजन करआये उन्होंने कहा हम भोजन दिन
में नहीं करते हैं और हृष्टपुष्ट देखते हैं अर्थसे यो ज्ञा-

न हुआ कि रात्रिका तो इन्होंने निषेध नहीं कियाहै रात्रिकूं भोजन करते हैं विचारो यो ज्ञान सच्चा है या नहीं इसका नाम अर्थापत्तिप्रमाणहै ५ किसीने कहा तुम कहतेहो इस स्थानमें घट नहींहै इसमें क्या प्रमाणहै उसने उत्तर दिया घटका लाभ न होनेसे अनुपलब्धिप्रमाण है ६ तात्पर्य्य इन प्रमाणों के लिखने का यो है कि ब्रह्मके सिद्धकरने में ऐसे ऐसे प्रमाण और अनेक युक्ति दृष्टान्त हैं प्रत्यक्षवादि आदिकूँ तो ऐसे ऐसे उत्तर देने योग्य हैं कि हे वादी! विचार देख ब्रह्म ऐसे ऐसे प्रमाणों से देखने में आताहै॥

और भेदवादी उपासनावालों और कर्मवादी आदि ; यो उत्तर देना योग्य है जैसे वेदकी दृष्टिसे तुम सूत ी आदि और परमेश्वरका दास मानतेहो ऐसेही वेदने ी कहा है तू ब्रह्म है जो यो कहो हम अभी इस योग्य नहीं हैं ऐसा कहैं मैं ब्रह्महूं हम बूझते हैं किसी प्रतिबन्ध े तुमकूं महावाक्यार्थ अर्थात् मैं ब्रह्महूं यो अपरोक्ष न होती यो कहो वेदांतशास्त्रका श्रवणादि और मैं ब्रह्म हूं ऐसी अनेक उपासना करनी कहां निषेधहै और विचारो अभ्यास अनजान वस्तुका करते हैं और अमद उपासना करनेमें छान्दोग्यउपनिषदादि गीता भाष्यादि बहुत ग्रंथ हैं उनमें ऐसी ऐसी उपासना करने में ब्रह्महूं मैं ईश्वर हिरण्यगर्भ विराट् हूं भले प्रकार ब्रह्मलोकादि फलके सहित लिखी हैं और भेदउपासना में बहुत जगह दोष कहे हैं और भलेप्रकार विचारो परिपूर्णकूं परिच्छिन्न कहना कितना बड़ा अनर्थहै वेदोंमें प्रकट लिखा

है शोककूं आत्माका जाननेवाला तरताहै १ उसी आत्मा कूं जानकरके मृत्युकूं उल्लंघेगा और कोई रस्ता मुक्तिका नहीं है २ कर्म धन पुत्र करके मुक्त नहीं होता है सबका त्याग ही करके मुक्तहोताहै ३ ज्ञानके बिना मुक्ति नहीं होतीहै ४ ऐसी ऐसी अर्थवाली बहुत श्रुति हैं फिर तुम कूं मैं ब्रह्महूं इसअर्थ ग्रहण करनेमें क्या वाद करना योग्यहै वेदोंका तात्पर्य्य सुनो कर्म करके तमोगुणका नाशहोताहै निद्रा, आलस्य, प्रमादादि तमोगुण का कार्य है प्रातःकालके स्नानादि कर्म करनेसे उन का नाश होताहै व्रतादिक करनेसे इन्द्रियादि का दमन होता है दानादि करनेसे पदार्थों में से आसक्ति दूर होजाती है तीर्थादि करने से घरके लोगोंसे प्रीति कमहोतीहै परदेश में जाकर बुद्धि बढ़ती है तीर्थोंमें महत्पुरुषों का समागम होताहै उनके सत्संग करनेसे संसारसे चित्त उपराम होताहै और भी बहुत इसप्रकार के कर्म कार्य्य हैं चित्तसे विचारने योग्य है अन्तःकरण का विषयों से उपरामहोना इसीकूं अन्तःकरणकी शुद्धिकहतेहैं उपासनासे रजोगुणकानाश होताहै विक्षेप तृष्णा लोभादि रजोगुण का कार्य्य है ध्यानादि करके उनका नाश होताहै ऐसे ऐसे साधनों से बढ़ा जो सत्त्वगुण उसकूं प्रकाशमय शान्तरूप होने से कार्य्य उसका विवेक, वैराग्य शम दमादि हैं इन साधन सम्पन्न होकर जगत् ब्रह्म, बन्ध,मोक्ष,नित्यानित्यादि का विचार किया विचार करने से यो ज्ञान हुआ कि ये सत्त्वादि तीनों गुण माया के हैं माया कूं मिथ्या होने से इन गुणों का जितना का-

र्थ्य स्थूल सूक्ष्म है सब मिथ्या है और मैं असंग सच्चिदानन्द नित्य मुक्तहूं इसी कूं ज्ञान कहतेहैं योंही ज्ञान मुक्ति का हेतु है और परमसिद्धांत तो वेदोंका यो है कि यो जगत् जीव ईश्वर प्रतिबिम्ब के सहित न कभी हुआ है न होगा न है एक मन वाणी करके अगोचर प्रत्यगात्मा नित्यानन्दरूप नित्य मुक्तहै न किसीका नाश न उत्पत्ति न देहके साथ सम्बन्ध है न कोई सुख दुःख धर्मवाला न श्रवण करनेवाला साधक न मुक्तिकी इच्छा वाला न मुक्तहै तात्पर्य्य जो जोहै सोहै यों श्रुतिका अर्थ है ॥ इति प्रथमोऽध्यायःसमाप्तः ॥ १ ॥

अथ द्वितीयोऽध्यायः ॥

अब अध्यारोप अपवाद न्याय करके निष्प्रपञ्चब्रह्म जगत् का प्रपंच करके फिर मुक्तिकूं सिद्ध करते हैं मुक्ति महावाक्यार्थ के ज्ञानसे होतीहै जैसे किसी कूं रज्जु में सर्पकी भ्रान्तिहै उसका दुःख कम्पादि लौकिक वाक्यार्थ के ज्ञानसे नाश होता है यहां के स्त्री चन्दन मालादि और परलोक के अमृत नन्दनवन देवाङ्गनादि की प्राप्तिसे उसका दुःख नाश नहीं होता है ऐसे इस जीवके तीन ताप पञ्च क्लेश यहां के और स्वर्गादि के पदार्थोंकी प्राप्तिसे नाश नहीं होतेहैं और न कम होते हैं महावाक्यार्थ के ज्ञान से नाश होते हैं महावाक्यार्थ का ज्ञान जब होताहै प्रथम पदार्थ का ज्ञान होजावे कै पदों का नाम वाक्य होता है महावाक्यमें तीन पद हैं तत् त्वम् असि इसलिये तत् पदका अर्थ अभी आगे लिखेंगे उससे प्रथम तत्पदार्थका लक्षण लिखते

हैं तत्पदार्थका अर्थात् ब्रह्मका लक्षण दोप्रकारका है तटस्थ १ स्वरूप २ सृष्टिस्थिति ३ लयका जो कारण अर्थात् जिससे यो जगत् हुआहै जिसमें ठहर रहाहै प्रलयसमय जिसमें लय होजाताहै सो ब्रह्मका तटस्थ लक्षण है और सत् चित् आनंदादि स्वरूप लक्षण है जैसे किसी पुरुष का लक्षण श्यामगौर रंग इतनी अवस्था ऐसे नेत्रादिहैंयो उसका स्वरूप लक्षणहै और जिसके बाहर कुंआ ऐसी उसकी हवेली ऐसे वस्त्र पहिर रहाहै यो उसका तटस्थ लक्षण है तत्पदका अर्थ दो प्रकारकाहै वाच्य १ लक्ष्य २ मायोपहित जो चैतन्य सो तत्पदका वाच्यार्थहै मायोपहित का अर्थ यो है माया उपहित यो दो पद हैं योदोनों मिलके व्याकरणकी रीतिसे मायोपहित यो एकशब्द बोलाजाताहै मायोपहित अर्थात् मायाकरके युक्त जैसे बिम्ब घटगत जल करके युक्त अथवा जैसे स्फटिकलालरंग की सन्निधिसे लालही प्रतीतहोताहै ऐसेही शुद्धब्रह्म मायाकी सन्निधिसे ईश्वर प्रतीतहोतेहैं जैसे स्फटिक लालरंग करके उपहित लाल स्फटिक कहा जाताहै और बिम्ब घटगत जल करके उपहित प्रतिबिम्ब कहा जाता है ऐसेही मायोपहित शुद्ध चैतन्य जगत् कारण ईश्वर कहेजाते हैं उपहितका अर्थ यहां भले प्रकार याद करलेना भले प्रकार बुद्धिमें निश्चय करलेना आगे बहुत जगह कामपड़ेगा प्रसंगयोंथा मायोपहित चैतन्य तत्पदका वाच्यार्थ और मायासे युक्त चैतन्य तत्पदका लक्ष्यार्थ है जैसे प्रतिबिम्ब से बिम्ब नित्यमुक्त है और शुक्ति भ्रांति कालमें भी

रजत नहीं हुई और जैसे स्फटिक लालरंग की सन्निधिकाल में भी श्वेतही रहताहै ऐसेही शुद्धब्रह्म मायोपहित और अविद्योपहित कालमें भी ॥

टी० । अविद्या उपहित ये दोनों पद मिलकर व्याकरणकी रीतिसे एक अविद्योपहित बोलाजाताहै अर्थ यो हुआ अविद्या करके उपहित ॥

मू० । चैतन्य असंग शुद्धही है माया किसकूं कहते हैं सुनो जैसे शुक्तिमें रजतकी भ्रांति ऐसे चैतन्यमें कारण-सूक्ष्मस्थूल प्रपंच जड़की जो भ्रांति इसीका नाम माया है यो सब ब्रह्महै १ यो सब वासुदेव हैं २ ऐसी ऐसी अर्थवाली बहुत श्रुति स्मृति चैतन्य का भाव और जड़ का अभाव कहती हैं चैतन्य पदार्थ क्याहै सुनो सत् । चित् । आनन्द । शुद्ध । बुद्ध । एक । स्वयंप्रकाश । अनन्त । नित्यमुक्त । शान्त । अखण्ड । अज । अमर । परिपूर्ण । निरंजन । निरवयवअसंग । अद्वय । अव्यक्त । अचिन्त्य । सर्वगत । अचल । सनातन । नित्य । आत्मा । परमात्मा । परमेश्वर । ब्रह्म । प्रत्यगात्मा । ये चैतन्य पदार्थ के विशेषण हैं औरभी चितिज्ञान स्वरूपादि विशेषण हैं और जड़ अज्ञानसे आदि लेकर जो स्थूल पर्यन्तहैं सो सब जड़ हैं अज्ञानकूं प्रकृति और गुणों की साम्यावस्था और मूल अज्ञानभी कहते हैं सो अज्ञान सत्त्व, रज, तम इन तीन गुणोंवाला है स्वरूप उसका अनिर्वाच्य है सत् असत् करके कुछ नहीं कहाजाताहै जो सत्कहैं तो कुछ पदार्थ नहीं है और असत् कहैं तो प्रतीत होता है जैसे भ्रांति समय शुक्ति में रससे अनिर्वाच्य है परन्तु

ज्ञानसे उस अज्ञानका अभाव होने से वो अज्ञान भावरूपहै जैसे लौकिक व्यवहार में प्रथम कुछ भूल जावे फिर याद आजावे और जैसे बालकअवस्थामें तूलाज्ञान का भाव होताहै॥

टी०। तूलाज्ञान यो है जैसे किसी पदार्थकूं भूलजावे उसमें जो कारण और बालकअवस्था में जो अज्ञानसे तूलाऽज्ञान उसका न्यायशास्त्र और प्राकृतविद्या के पढ़नेसे और लौकिकव्यवहार से नाश होजाता है और मूलाऽज्ञानका तो केवल ब्रह्मविद्यासे नाश होता है॥

मू०। विद्या पढ़करके और व्यवहारादि से अज्ञानका अभाव होजाता है ऐसे अज्ञान कालमें कहता है कि मैं ब्रह्मकूं नहीं जानताहूं ज्ञानकाल में कहता है कि मैं ब्रह्म कूं जानताहूं ऐसा ऐसा अनुभव व्यवहार होनेसे निस्सन्देह प्रतीत होताहै कि एक अज्ञान पदार्थ अनिर्वाच्य है भाव और अभाव उसके दोनों प्रतीत होते हैं अज्ञान १ माया अविद्याका भेद २ मायोपहित शबलब्रह्म ३ जीव ४ जीव ईश्वरका भेद ५ शुद्धब्रह्म ६ ये सब अनादि हैं इनकूं यो नहीं कहाजाता है ये कबसे हैं कबसे इनका भेदहुआ है और शुद्धब्रह्म कबसे मायोपहित अविद्योपहित हुये जैसे यो नहीं कहाजाताहै शरीर प्रथम हुआ या कर्म दृष्टांत योहै बीज प्रथम हुआ या वृक्ष और जैसे स्वप्न में जो उपवन, मन्दिर, मृग, मित्र, शत्रु आदि दीखते हैं विचारो कि उपवन मन्दिरकी कौनसे संवत् मुहूर्त में नींव रक्खी गईहै और मित्रादि का कौनसे संवत् मुहूर्त में जन्म हुआहै योंही निश्चय करो जैसे द-

दृष्टान्त के पदार्थों की व्यवस्था है वैसेही दार्ष्टांत के पदार्थों में शुद्धब्रह्म अनादिभी और अनित्यभी हैं और सब अनित्य हैं ज्ञानकालमें शुद्धब्रह्म के बिना सब नष्ट होजाते हैं वो अज्ञान माया अविद्या भेदसे दो प्रकार काहै शुद्ध सत्त्व प्रधान हुआ माया मलिनसत्त्व प्रधान हुआ अविद्या कहाजाता है रजोगुण तमोगुण करके जो सत्त्वगुण नहीं तिरोभाव होता है सो शुद्धसत्त्व और रजतमोगुण करके जो सत्त्वगुण तिरोभाव होजाता है सो मलिनसत्त्व कहाजाताहै माया अविद्या का भेद ऐसे समझो जैसे एक पुरुष क्रियाके निमित्तसे पाठक याचक कहलाताहै और जैसे एक स्त्री पिताकी अपेक्षा करके कन्या पति की अपेक्षा करके पत्नी है ऐसे वो अज्ञान ईश्वर की अपेक्षा करके माया और जीवकी अपेक्षा करके अविद्या कहा जाताहै ऐसा भेद नहीं समझना कि अज्ञानके दो टूक होगये, अथवा उस अज्ञानकी शक्ति दो प्रकारकी है ज्ञानशक्ति १ क्रिया शक्ति २ रजोगुण तमोगुणसे नहीं दबा जो सत्त्वगुण सो ज्ञानशक्ति १ क्रिया शक्ति दो प्रकारकी है आवरणशक्ति १ विक्षेपशक्ति २ रजसत्त्वगुणसे नहीं दबा जो तमोगुण सो आवरणशक्ति और तमसत्त्वगुण से नहीं दबा जो रजोगुण सो विक्षेपशक्ति वोही अज्ञान आवरणशक्ति प्रधान हुआ अविद्या और विक्षेप शक्ति और ज्ञानशक्तिप्रधान हुआ माया मायोपहित चैतन्य ईश्वर कहाजाता है वोही तत्पदका वाच्यार्थ है और वोही चैतन्य अविद्योपहित जीव प्राज्ञ कहाजाता है मायोपहित ईश्वर तो माया

के वश नहींहुये इसलिये सर्वज्ञ ईश्वरादि नामकर के
कहे गये और अविद्योपहित जीव अविद्या के वश हो-
गया उस अविद्याकी विचित्रतासे नानाप्रकारका होगया
इसलिये अल्पज्ञ कहागया जैसे कोई पुरुष शीशेके
मकानमें बैठाहुआ आप कूं और औरोंकूं भी देखताहै
मृत्तिकाके मन्दिर में बैठाहुआ आपही कूंदेखता है कभी
बहुत अँधेरे में अपना आपा भी नहीं देखताहै माया
शुद्ध सत्त्व प्रधान होनेसे माया शीशेके मन्दिरकी सदृ
है और अविद्या में मलिन सत्त्व प्रधानहोनेसे अविद्य
मृत्तिकाकेमन्दिरके सदृशहै मायामें प्रतिबिम्ब जो चैतन
का सो ईश्वर अविद्या में प्रतिबिम्ब जो उसी चैतन्य क
सो जीव यहां बिम्ब प्रतिबिम्ब का भेद सूर्य बिम्ब औ
घटगत जल प्रतिबिम्बवत् नहीं समझना ऐसे समझ
जैसे आकाशका प्रतिबिम्ब जल में प्रथम दृष्टान्तमें
कुछ दोष नहीं है परन्तु परिच्छिन्नभेदसा प्रतीत होता
सो कुछदोष नहींहै दृष्टान्त एकदेशमें होताहै आकाश
दृष्टान्तसे बिम्बका भेद और परिच्छिन्नता नहीं प्रती
होतीहै इसपक्षमें जी तो एकहीहै परंतु अन्तःकरणकी उ
पाधिसे बहुत प्रमाता कल्प रक्खे हैं अन्तःकरणविशिष्ट
चैतन्यकूं प्रमाता कहते हैं कोई ऐसा कहते हैं अनेक अ
ज्ञान हैं वनवत् जो अज्ञानोंका समुदाय सो समष्टि औ
वृक्षवत् जो एक अज्ञान सो व्यष्टि वोही चैतन्य। अज्ञान
समष्टि। करके उपहित ईश्वर और वोही चैतन्य व्यष्टि
अज्ञानकरके उपहित जीव कोई ऐसा कहतेहैं कारणीभू
जो अज्ञान उससे उपहित चैतन्यईश्वर और अन्त

करके उपहित वेही चैतन्यजीव तात्पर्य्य कारण उपाधि-
वाले ईश्वर और कार्य्य उपाधिवाला जीव सबका सि-
द्धांत यो है मायोपहित चैतन्यईश्वर अविद्योपहित चै-
तन्य जीव सो ईश्वर ज्ञानशक्ति करके उपहित जगत्के
निमित्तकारण विक्षेप शक्तिकरके उपहित उपादानकारण
जैसे मकड़ी जालेके प्रति चैतन्य प्रधानता करके तो नि-
मित्तकारण और शरीरप्रधानता करके उपादानकारण
यो मकड़ीका दृष्टांत श्रुतिने कहाहै कि जिस प्रकार म-
कड़ी जालेकूं रचती है फिर अपने में लय करलेती है
तात्पर्य परमेश्वर जगत्के कर्त्ता अभिन्न निमित्तोपादान-
कारण हैं अर्थात् नहीं हैं भिन्न निमित्त और उपादान
कारण जिन्होंसे सो अभिन्ननिमित्तोपादानकारण इस प्र-
कार जगत्के कारण ईश्वर हैं ऐसे नहींहैं जैसे घटके
वनाने में कुलाल भिन्ननिमित्तोपादानकारण है अर्थात्
भिन्न है निमित्त और उपादानकारण जिससे सो भिन्न-
निमित्तोपादानकारण कुलाल तात्पर्य घटके बनाने में
मृत्तिका उपादान और कुलाल दण्ड चक्रादि निमित्त है
ईश्वर तो आपही उपादान और आपही निमित्तकारण
है पूर्वरीतिसे भले प्रकार विचारना योग्य है निरीश्वर-
वादी पूर्व मीमांसकादिकूं जो यो तर्क जगत् के मोह के
लिये वाचालकरावै है उस तर्ककूं सुनो वो लोग यों कहते
हैं ईश्वर जो त्रिभुवनकूं रचते हैं सो त्रिभुवन के रचने
में क्या क्या चेष्टा करते हैं और रचनेके समय किस
प्रकार की काया है जिनकी अर्थात् किसरूप हुये हुये
और क्या है उपाय और आधार जिनका और क्या उ-

यो मन्त्र माण्डूक्य बृहदारण्य छान्दोग्यउपनिषद् और पंचीकरण आचार्योंके ग्रन्थ हैं उन्हों के मतसे बनाया गया है विस्तार

एकवोही चैतन्य मायोपहित और सूक्ष्मसमष्टि करके उपहित स्थूल समष्टि करके वोही चैतन्य समष्टि स्थूल उपाधि का अभिमान छोड़कर मायोपहित और सूक्ष्म स- सूत्रात्मा प्राण कहा जाताहै फिर वोही चैतन्य समष्टि स्थूल और समष्टिसूक्ष्म उपाधि का जगत्कारण अव्याकृत अन्तर्यामी शबल ब्रह्म कहा जाताहै और वोही चैतन्य तीनों होजाता है ॥ एक वोही अविद्योपहित चैतन्य जीव नामा जाग्रत् अव- चैतन्य स्वप्न अवस्थामें सूक्ष्मकारण शरीरों का अभिमानी हुआ तैजस कहाजाताहै जाताहै फिर वोहीचैतन्य तीनों शरीरों को और तीनों अवस्थाका अभिमान छोड़ त्रयका जो कारण सो ईश्वर+साराजगत् जिसके गर्भ+में है सो हिरण्यगर्भ+नाना करणमें सामान्य करके विकलताकरके जो पदार्थोंको जानताहै सो तैजस+विशेष

आत्माभास	समस्तवेदों कासार	ये दो दृष्टान्त हैं		यो जो शुद्ध ब्रह्म सच्चिदानन्द नित्यमुक्त सोई अज्ञान जीव कहा जाताहै+यो अज्ञान अनादि अनिर्वाच्य सत्त्व प्रकार काहै सो अज्ञान शुद्ध तत्त्वप्रधान हुआ माया ईश्वर अविद्यामें प्रतिबिम्बजो उसी चैतन्यका सो जीव तत्त्वमसि महावाक्य +जैसे किसीने कहा सो अर्थात् रुपये तुम यज्ञदत्त को ४ प्रथम चारोंपदों का अर्थ जानाजावे पीछे वाक्यार्थ		
		जैसे वस्त्र में चार अवस्था	जैसे पृथ्वी में चारअवस्था			
	सच्चिदानन्द शुद्धब्रह्मनित्यमुक्त	सुफेद	निर्बीज	उपाधि	अभिमानी	अज्ञान
मू	अज्ञानकारण उपाधिसे माया अविद्या के भेदसे दो प्रकारका	घट्टित प्रथम देनारंग चावलका फटफटीका	छिपी बीज वाली	शुद्ध सत्त्व प्रधान हुआ माया	ईश्वर अन्तर्यामी अव्याकृत जगत्कारण शबल ब्रह्म	
ए	सूक्ष्मउपाधि सोसमष्टिव्यष्टिके भेदसे दोप्रकारका	लांछित उसमें चिह्नकरदने जैसे प्रथम चुनरीमें	अंकुर वाला	समष्टि सूक्ष्म	हिरण्यगर्भ सूत्रात्मा प्राण	ढका जावे पदार्थ जिस कारण का और दीखे उसी का नाम प्रतीत होती है जिस कारण ही शुद्ध ब्रह्म जिस कारण से ईश्वर हिरण्यगर्भ विराट् वि- उन्हीं का नाम उपाधि है×
अ	स्थूलउपाधि सोसमष्टिव्यष्टिके भेदसे दो प्रकारकी	रंजित रक्तादि रंगदेना	फल फूलके सहित वृक्ष वाली	समष्टि स्थूल	विराट् वैश्वानर	प्रथमंपुनः । स्वस्वैतराद्विती-

आ घा
आ आ वा ते
आ आ आ आ वा ते
आ वा वा वा वा
आ वा ते ज पृ वा ते ते ते ते
आ ते ज पृ ते

वार्त्तिकादि जो जो श्रीशंकरभगवान् भाष्यकारसेंआदिलेकर

+इसका आनन्दामृतवर्षिणीके दूसरे अध्यायमें है ॥

उपहित तात्पर्य्य तीनों उपाधियोंका अभिमानी हुआ विराट् वैश्वानर कहाजाताहै फिर मष्टि करके उपहित तात्पर्य्य सूक्ष्म समष्टि और मायाका अभिमानीहुआ हिरण्यगर्भ अभिमान छोड़कर केवल मायोपहित हुआ तात्पर्य्य मायाका अभिमानी हुआ ईश्वर उपाधियों से रहित तात्पर्य्य तीनों उपाधियों का अभिमान छोड़कर शुद्धब्रह्म वैसाही स्था में स्थूल सूक्ष्म कारण शरीरों का अभिमानी हुआ विश्व कहाजाताहै फिर वोही फिर वोही चैतन्य सुषुप्ति अवस्था में कारण शरीर का अभिमानी हुआ प्राज्ञ कहा कर वैसाही शुद्ध परमात्मा कहा जाताहै इसीकूं तुर्यावस्था कहते हैं—सृष्टि स्थिति रूप जो होरहा है सो विराट् + जो पदार्थोंको कुछ भी नहीं जाने सो प्राज्ञ—अन्तः करके जो पदार्थों को जानताहै सो विश्व + ,

करके उपहित अध्यसोप में मुक्तिकी इच्छावाले पुरुषोंकूं समझाने के लिये ईश्वर रज तम इनतीन गुणोंवालाहै इनतीन गुणोंमें जो सत्त्वगुण सो शुद्धमलिन भेद से दो मलिनसत्त्व प्रधान हुआ अविद्या कहा जाताहै मायामें प्रतिबिम्ब जो चैतन्य का सो कहाजाताहै ॥

का अर्थ तात्पर्य्य तत्त्वपदोंका लक्ष्यार्थ एक शुद्ध ब्रह्म चैतन्य

वेदो इसकूं वाक्य कहते हैं इस वाक्यमें चारपद हैं सो १ तुम २ यज्ञदत्तकूं ३ वेदो जानाजाताहै ऐसेही महावाक्यमें तत् १ त्वम् २ असि ३ तीन पदहैं+

सत्त्व रज तम	उपाधि	अभिमानी	अवस्था	शरीर	मात्रामें
करके तात्पर्य्य पदार्थ और उपाधिहै जैसे शुक्ति में रजत करके सोई उपाधि है ऐसे तात्पर्य्य जिन्ह उपाधियों से व तैजस प्राज्ञ कहाजाताहै द्विधाविधाय चैकैकं चतुर्द्धा पांशैयोंजितापंचपंचते ॥	मलिन सत्त्व प्रधान हुआ अविद्या	प्राज्ञ	सुषुप्ति	कारण	म्
	व्यष्टि सूक्ष्म	तैजस	स्वप्न	सूक्ष्म	उ
	व्यष्टि स्थूल	विश्व	जाग्रत्	स्थूल	अ

ज
ते ज ज पृ पृ
ज ज ज ज पृ पृ पृ पृ
आ वा ज पृ ज आ वा ते पृ पृ आ वा ते ज

पादान है यों तर्क उनकी अतर्क्य ईश्वर के विषय दुर्बलहैं परमेश्वर की रचना में तर्क का अवसर नहीं क्योंकि परमेश्वरकी माया नहीं घटने के योग्य पदार्थ कूं घटासक्ती है और मनुष्य की रचना इन्द्रजालादि में बुद्धि काम नहीं करती है परमेश्वर की रचनामें तो नष्ट बुद्धि तर्क करते हैं तो भी उस तर्कके खण्डन के लिये कहाहै जो ऊपर अभिन्ननिमित्तोपादानकारण प्रकार वो वज्र उनके मुख में मारना योग्य है ॥

इस रीतिसे जगत् का कर्ता ईश्वर कूं सिद्धकिया और कारण प्रपंचका यहां तक निरूपण किया जगत् में तीनप्रपंचहैं कारण १ सूक्ष्म २ स्थूल ३ अब सूक्ष्म प्रपंचका निरूपण करते हैं पूर्व सिद्ध कियेहुये जो मायोपहित चैतन्य ईश्वर उनसे प्रथम महत्तत्त्व अहंकार की सूक्ष्म अवस्था फिर महत्तत्त्व से अहंकार अर्थात् मैं एकहूं बहुत होजाऊं फिर अहंकार से आकाश आकाश से वायु वायु से तेज तेजसे जल जलसे पृथ्वी अर्थ इन सबका ऐसा करना महत्तत्त्व करके उपहित जो ईश्वर उनसे अहंकार हुआ तात्पर्य्य यो है महत्तत्वादि सब जड़ पदार्थ हैं विना चैतन्य रचना नहीं होसक्ती है निश्चय इसी आत्मा से आकाश हुआ है यो श्रुतिका अर्थ है माया कूं तीन गुणोंवाली होनेसे कार्य्यभी उसका आकाशादि पञ्च तीनगुणोंवाले हैं उनकूं अपंचीकृत सूक्ष्मभूत और तन्मात्रा भी कहते हैं इन्हीं सूक्ष्मभूतों से पञ्चीकृत स्थूलभूत उत्पन्नहुये हैं और सूक्ष्मशरीर १७ लिंगवाला उत्पन्न हुआ १७ लिंग ये हैं ॥

टी०। सूक्ष्म शरीर कूं कोई १६ लिंग कोई १७ कोई १९ लिंगवाला कहते हैं लिंगही कूं तत्त्व कहते हैं इन्द्रियदश प्राण पंच अन्तःकरण एक इस प्रकार १६ और इन्द्रिय प्राण १५ मन बुद्धि २ इस प्रकार १७ और इन्द्रिय प्राण १५ मन बुद्धि चित्त अहंकार ४ इस प्रकार १९ परन्तु बहुत १७ तत्त्ववाला कहते हैं॥

मू०। शब्दादिका ज्ञान होताहै जिन इन्द्रियों से सो ज्ञानेन्द्रिय पंच और कर्म क्रिया जाता है जिन इन्द्रियों से सो कर्मेन्द्रिय पंच प्राणादि पंच मन बुद्धि २ आकाशादिके सत्त्व गुण के अंशसे पृथक् पृथक् पंच ज्ञानेन्द्रियहुये सोई लिखते हैं आकाश से श्रोत्र वायु से त्वक् तेजसे चक्षु-जलसे रसना पृथ्वी से घ्राण और आकाशादि के मिले हुये सत्त्वगुण के अंश से अंतःकरण सो वृति भेदसे चार प्रकारका है संकल्प विकल्प वाला मन निश्चयवाली बुद्धि अभिमानवाला अहंकार अनुसंधानवाला चित्त और आकाशादि के रजोगुण के अंश से पृथक् पृथक् पञ्च कर्मेन्द्रिय हुये हैं आकाशसे वाक् वायु से पाणि तेज से पाद जलसे उपस्थ पृथ्वी से वायु और आकाशादि के मिले हुये रजोगुण के अंश से प्राण सो वृति भेद से पांच प्रकार का है, बाहरकूं निकलनेवाला नासिका मुखमें रहनेवाला प्राण १ नीचेकूं जानेवाला वायु आदि में रहनेवाला अपान २ सब शरीर में फिरनेवाला सब शरीर में रहनेवाला व्यान ३ खाये पिये कूं सब नाड़ियोंमें पहुँचानेवाला सारे शरीर में रहनेवाला समान४ ऊपरकूं जानेवाला कण्ठ में रहने वाला उदान ५ और

पञ्च उपप्राण हैं उनका भी इन्हीं पांच में अंतर्भाव है, उद्गार में जो हेतु सो नाग १ नेत्रों के खोलने मींचने में जो हेतु सो कूर्म २ मूकका जो हेतु सो कृकल ३ जम्भाई लेनेमें जो हेतु सो देवदत्त ४ सब जगह रहनेवाला धनञ्जय जोमुरदेकूं फुलादेताहै आकाशसे दोइन्द्रिय श्रोत्र और वाक् हेतु यों है श्रोत्र करके जो आकाशका सद् गुण सो ग्रहण किया जाता है और वाक् से बोलाजाता है वायु से दो इन्द्रिय त्वक् और पाणि हेतु यों है त्वक् करके तो वायुका जो स्पर्श गुण उसका ज्ञान होता है और पाणि से त्वक् की रक्षा होती है तेजसे दो इन्द्रिय चक्षु और पाद हेतु यों है चक्षुकरके तो तेजका जो गुण रूप उसका ज्ञान होताहै और पैरके मलने से चक्षुकी गरमी दूर होतीहै जलसे दो इन्द्रिय रसना उपस्थ हेतु यों है रसना करके तो जलका जो गुण रस उसका ज्ञान होता है और तरह रहताहै औरउपस्थ करके जलकात्याग होता है पृथ्वी से दो इन्द्रिय घ्राण और वायु हेतु यों है घ्राण करके तो पृथ्वी का जो गुण गंध उसका ग्रहण होताहै और वायुसे गंधका त्याग होता है, और अन्तःकरण समष्टि पांचोभूतों के सत्त्वगुणके अंशसे उत्पन्न हुआ है हेतु यों है पांचोंज्ञानेंद्रियों के विषोंकूं अनुभव करताहै अन्नमय, प्राणमय, मनोमय, विज्ञानमय, आनन्दमय ये पंचकोश कारण सूक्ष्म स्थूलशरीरोंके अंतर्भाव हैं आगे जो कहेंगे स्थूल शरीर सोतो अन्नमयकोश हैं सूक्ष्म शरीरमें तीन कोश हैं पंच कर्मेंद्रिय करके सहित जो पंचप्राण सो प्राणमयकोश और पञ्चज्ञाने-

न्द्रिय करके सहित जो मन सो मनोमयकोश और पञ्च ज्ञानेन्द्रिय करके सहित जो बुद्धि सो विज्ञानमय कोश है मनोमय विज्ञानमय कोशमें यो भेद है मनोमय कोश तो करण और विज्ञानमय कोश कर्त्ता है क्रिया में कर्त्तादि ये षट्कारक होते हैं । कर्त्ताकर्मचकरणंच संप्रदानंतथैवच । अपादानाधिकरणमित्याहुःकारकाणि षट् ॥ और कारण शरीरमें कारण शरीरभूता अविद्या में जो मलिन सत्त्व सो प्रियमोद प्रमोद वृत्ति करके सहित आनन्दमय कोश है कोई अज्ञानकूं आनंदमय कोश कहते हैं जो वस्तु प्राप्त न हो और अच्छी प्रतीत हो उस समय की वृत्तिकूं प्रिय कहते हैं १ फिर वोही वस्तु जब अपनी होजावे उस समय में जो आनंद सो मोद २ उसके भोगने में जो आनंद वो प्रमोद ३ यो सूक्ष्म शरीर समष्टि व्यष्टि भेदसे दो प्रकारका है वनवत् सूक्ष्म शरीरों का समुदाय समष्टि वृक्षवत् पृथक् पृथक् एक एक सूक्ष्म शरीर व्यष्टि जैसे उपवन समष्टि और उसी उपवनका एक एक वृक्ष व्यष्टि सूक्ष्म समष्टि करके उपहित वोही मायोपहित चैतन्य हिरण्यगर्भ कहा जाता है और सूक्ष्म व्यष्टि करके उपहित वोही अविद्योपहित चैतन्य तैजस कहाजाता है समष्टि व्यष्टिकूं तादात्म्य होनेसे उनकरके उपहित हिरण्यगर्भ तैजस की भी तादात्म्यता है जैसे वन और वृक्ष करके उपहित आकाशमें कुछ भेद नहीं ऐसे हिरण्यगर्भ तैजसमें भेद नहीं और भी दृष्टांत हैं जाति व्यक्ति सामान्य विशेष नगर मोहल्ला इन का बिना विचारके भेद है वास्तव भेद नहीं,

यो सूक्ष्म शरीर अविद्या कामकर्म करके सहित पुर्यष्टक कहाता है सोई लिखते हैं, ज्ञानेन्द्रिय पंच १ कर्मेन्द्रिय पंच २ चार अंतःकरण ३ पंच प्राण ४ पंच सूक्ष्मभूत ५ अविद्या ६ काम ७ कर्म ८ अविद्या का कार्य चार प्रकारका है ब्रह्मलोक पर्यंत जो पदार्थहैं उनमें नित्यबुद्धिहोनी १ दुःखों में और दुःखोंके साधनों में जो सुख बुद्धि २ देहादि अनात्मा पदार्थों में आत्मा बुद्धि ३ अपवित्र जो अपने और पुत्रादि के शरीर उनमें पवित्र बुद्धि ४ काम रागकूं कहते हैं कर्म तीन प्रकारका है संचित १ आगामी २ प्रारब्ध ३ अपना कियाहुआ कर्म फलकूं नहीं देकर जो अदृष्टरूप करके ठहर रहा है सो संचित १ इस शरीर में जो किया जाता है सो आगामी २ स्थूल शरीरके जन्म स्थितिका जो हेतु सो प्रारब्ध ३ संचित आगामी कर्मोंके फलका भोग करके वा उसका विरोध कर्म करके वा ब्रह्मज्ञान करके नाश हो जाता है ॥

और प्रारब्ध कर्मका भोगने से नाश होता है प्रारब्ध से पृथक् अविद्यादि पंच क्लेश हैं उनका ब्रह्मज्ञानसे नाश होताहै अविद्या १ अस्मिता २ राग ३ द्वेष ४ अभिनिवेश ५ कारण कार्य करके अविद्या तो दो प्रकारकी ऊपर लिख आये हैं अहंकार की सूक्ष्म अवस्थाकूं अस्मिता और महत्तत्त्व और सामान्य अहंकार भी कहते हैं राग कामकूं कहते हैं द्वेष क्रोधकूं कहते हैं अपने आप ग्रहण करके फिर उसके त्यागकूं न सहना इसकूं अभिनिवेश कहते हैं ब्रह्मकूं जानकरके सारे क्लेशों से छूट जाता है या श्रुतिका

अर्थ हैयहांतक सूक्ष्म शरीरकी उत्पत्ति लिखी अब स्थूल शरीरकी उत्पत्ति लिखते हैं, पञ्चीकृत पञ्चस्थूल भूत हैं आकाशादिके तामस अंशकूं लेकर अर्थात् बुद्धि में कल्पनाकरकेप्रथम एक एकके दो दो टूककरे दोमें से एककूं पृथक् रक्खे उस दूसरेके चारचार भागकरे फिर उनचारों भागोंकूं अपने अपने भागकूं छोड़कर औरों में मिलादेना यो पञ्चीकरण कहलाता है जिसका भाग जिसमें सिवाय है वोही कहने में आता है जैसे मनुष्य शरीरकूं पार्थिव कहते हैं पञ्चीकृत स्थूल भूतों का जो रचाहुआ स्थूल शरीर उसमें पञ्चीकृत स्थूल भूत हैं और अपञ्चीकृत भूतोंके तामस अंशका कार्य्य इस प्रकारहै, पञ्चीकृत जो पृथ्वी उसकी पृथ्वी का कार्य्य अस्थि क्योंकि कठिन है जलका कार्य्य मांस कुतः बहजाता है और शिथिल है तेजका कार्य्य नाड़ी कुतः ज्वरकी परीक्षा करती है वायु का कार्य्य त्वक् कुतः स्पर्श करती है आकाश का कार्य्य रोम कुतः काटने से दुःख नहीं होताहै पञ्चीकृत जो जल उसकी पृथ्वी का कार्य्य शोणित कुतः पृथ्वी की सदृश रक्त है जलका कार्य्य शुक्र कुतः श्वेत है और उससे गर्भ होताहै जैसे जल से सब वस्तु की उत्पत्ति है तेजका कार्य्य मूत्र कुतः उष्ण है वायु का कार्य्य स्वेद कुतः बहुत दम चलने से आजाता है और वायु से सूखजाताहै आकाशका कार्य्य राल कुतः ऊपरकूं जाती है और आकाशभी ऊंचाहै और पञ्चीकृत जो तेज उसकी पृथ्वी का कार्य्य आलस्य कुतः आलस्यमें जड़ता है जलका कार्य्य कांति कुतः जल के स्पर्श स्नानादिसे सुन्दरता होतीहै तेज

का कार्य्य क्षुधा कुतः अन्नकूं पचाती है वायुका कार्य तृषा कुतः ओष्ठ कण्ठ सूख जाताहै आकाश का कार्य्य निद्रा कुतः निद्रा में निर्विकल्प होजाताहै और पंचीकृत जो वायु उसकी पृथ्वीका कार्य्य सङ्कोचन कुतः जिस समय मनुष्य सुकड़कर बैठे तो भारी और जड़सा होजाती है जलका कार्य्य चलना कुतः जलभी चलता है तेजका कार्य्य उठना उछलना कुतः उठने उछलने में ऊंचा होताहै और अग्नि भी ऊपरकूं जाता है वायुका कार्य दौड़ना कुतः दौड़ने में बल होता है और वायु में भी बल और वेगहै आकाशका कार्य पसरना कुतः आकाशभी व्यापक है और पसारने में भी व्यापक होता है अर्थात् फैलताहै और पंचीकृत जो आकास उसकी पृथ्वी का कार्य कटि जहां मल रहता है कुतः गंधस्थान है जल का कार्य उदर कुतः जलका स्थान है तेजका कार्य हृदय कुतः उष्ण रहता है वायुका कार्य कण्ठ कुतः वायुका स्थान है आकाश का कार्य शिर कुतः शब्दस्थान है और अनहद शब्द होतारहता है और पञ्चीकृत आकाशका भेद दूसरे प्रकार ऐसे हैं उसकी पृथ्वी का कार्य भय कुतः भय से अंतःकरण में तम प्रधान होजाता है और तम पृथ्वी का भाग है जलका कार्य मोह कुतः जल के स्पर्श से उत्पन्न होती है जो सुंदरता उसकूं देखकर मोह होतीहै तेजका कार्य क्रोध कुतः क्रोधके समय हृदय गरम होताहै वायु का कार्य कामकुतः वायुभी चंचलहै और कामभी चंचल है आकासका कार्य लोभ कुतः आकाशकी भी अवधि नहीं लोभकी भी अवधि नहीं॥

	पृथिवी	जल	तेज	वायु	आकाश
पृथिवी	अस्थि	मांस	नाड़ी	त्वचा	रोम
जल	रक्त	वीर्य	मूत्र	स्वेद	राल
तेज	आलस्य	क्रान्ति	भूख	प्यास	निद्रा
वायु	संकोचना	चलना	उठना उछलना	दौड़ना	फहराना
आकाश	कमरमें	पेटमें	हृदयमें	कंठमें	शिरमें
दूसरी प्रकार आकाश	भय	मोह	क्रोध	काम	लोभ

शब्द गुण जिसमें रहताहै सो आकाश सावकाश रूप रूपरहितस्पर्शवाला वायु गर्म स्पर्शवाला तेज सो चारप्रकार काहै अग्नि आदि स्वर्णादि विद्युदादि जठराग्नि शीत स्पर्श वाला जल गन्धवाली पृथिवी पंचभूतों के जो लक्षण कहे हैं सो तीनों दोषों से रहितहैं जिस लक्षण में अव्याप्ति अतिव्याप्ति असम्भव ये तीन दोष पाये जावें वो प्रमाण नहीं जैसे किसीने कहा गौ कपिला होतीहै इसमें अव्याप्ति दोष है कुतः बहुत गौ कपिला नहीं होतीं फिर कहा सींगवाली गौ होतीहै इस में अतिव्याप्ति दोष है क्योंकि सींगहिरन आदिके भी होतेहैं फिर किसी ने कहा एकखुरवालीगौ होती है इस में असम्भव दोष है कुतः यह लक्षण गौ में सम्भव नहीं होसक्ता वो लक्षण प्रमाणहै जो सब दोषसे रहित हो जैसे गौ का लक्षण सींग शास्ना आदि वाली गौ विचा-

रो इसमें कोई दोष नहीं आकाशमें एक गुण शब्द वायु में दो शब्द स्पर्श तेजमें तीन शब्द स्पर्श रूप जलमें चार शब्द स्पर्श रूप रस पृथिवीमें पांच शब्द स्पर्श रूप रस गन्ध पंचीकृत पृथिवी आदि से ब्रह्माण्ड हुआ ब्रह्माण्ड में चौदह लोक भूः । भुवः । स्वः । महः । जन । तप । सत्य । ये सात ऊपर ऊपरके लोकहैं और तल । वितल । सुतल । तलातल । महातल । रसातल । पाताल । ये सात ७ नीचे नीचे के लोक हैं ब्रह्माण्ड से मनु और शतरूपा हुये ब्रह्माण्ड में जो पृथिवी उस से औषधि हुई औषधि से अन्न माता पिता के खाये हुये का परिणाम जो शोणित उससे स्थूल शरीर उत्पन्न हुआ शरीर चार प्रकारके हैं मनुष्यादि के शरीर जरायुज अर्थात् जरस्से उत्पन्न हुये पक्षी नागादि के शरीर अण्डज अर्थात् अण्डे से उत्पन्न हुये लीक जूं आदिके शरीर स्वेदज अर्थात् पसीने से उत्पन्न हुये तृण वृक्षादि उद्भिज पृथवी कूं भेदन करके उत्पन्न हुये और मनु सनक सनन्दनादि शरीर इन चारों से पृथक् हैं वे मानवी सृष्टि में हैं सुना जाताहै ये ब्रह्माजी के मनसे उत्पन्न हुये हैं यह स्थूल शरीर समष्टि व्यष्टि भेद करके दो प्रकार का है पंचीकृत पंचमहाभूत और उनका कार्य ब्रह्माण्ड और ब्रह्माण्डके भीतर जो पंच भूतोंका कार्य स्थूल शरीरादिका समुदाय यह सब समष्टि और पृथक् पृथक् स्थूल शरीर व्यष्टि इस स्थूल समष्टि करके उपहित वही मायोपहित चैतन्य विराट् कहा जाताहै और स्थूल व्यष्टि करके उपहित वही अविद्योपहित चैतन्य विश्व कहा

जाता है समष्टि व्यष्टिकूं जाति व्यक्ति सामान्य विशेष वनवृक्षवत् तादात्म्य होने से उन करके उपहित विराट् विश्वकीभी एकताहै इस जीव की प्रसिद्ध तीन अवस्था हैं प्रसिद्ध लिखने से यह अभिप्रायहै कोई मरण और मूर्च्छा ये दो अवस्था और भी कहतेहैं परन्तु प्रसिद्ध तीन अवस्था हैं जाग्रत् स्वप्न सुषुप्ति जाग्रत् का अर्थ जानने के लिये प्रथम इन्द्रिय और अन्तःकरण और शब्दादि विषय और बोलनादि क्रिया और संकल्पादि अन्तःकरण के धर्म्म और दिक् आदि देवताओं के सहित सबकूं पृथक् पृथक् लिखते हैं यह संकेत याद रखना चाहिये एक का अंक जिसके आगे उसकूं इन्द्रिय वा अन्तःकरण जानना इसीकूं अध्यात्म कहते हैं और दोका अंक जिसके आगे उसकूं ज्ञानेन्द्रिय का विषय वा कर्मेन्द्रिय की क्रिया वा अंतःकरण का धर्म जानना इसीकूं अधिभूत कहतेहैं और तीनका अंक जिसके आगे उसकूं देवता जानना इसीकूं अधिदैव कहतेहैं जिस इन्द्रिय और मनादि के आगे विषय क्रिया धर्म देवता लिखेहैं उसी उस इन्द्रिय मनादि के विषय क्रिया धर्म देवता हैं शब्दादि पांचकूं विषय और बोलनादि पांचकूं क्रिया और संकल्पादि चारकूं धर्म्म बोलते हैं श्रोत्रादि इन्द्रिय सूक्ष्म हैं कान नासिकादि जो स्थूल शरीर में दीखते हैं ये उनका आश्रय हैं अर्थात् उनमें रहतेहैं बहुत करके तो बहिर्मुखहैं कभी भीतर का भी कुछ ज्ञान होजाताहै श्रोत्र कान में रहताहै बहुत करके तो बाहरके शब्दकूं सुनताहै कभी कान बन्द करनेसे कुछ शब्द भी-

तर का भी सुना जाताहै श्रोत्र करके सुना जाताहै जो शब्द सो दो प्रकारकाहै एक शङ्खादि का दूसरा भेरी आदिका सो पांचो भूतों में रहताहै २ दिक् ३ त्वक् सारे शरीर में रहताहै बहुत करके तो बाहर के शीत कोमलादि कूं विषय करताहै कभी उष्णादि वस्तु के खाने से भीतर के स्पर्श का ज्ञान होताहै १ त्वक् करके जो स्पर्श कियाजाताहै सो स्पर्श पांच प्रकारकाहै शीत गर्म न शीत न गर्म कठिन कोमल शीतस्पर्श जलमें गर्म स्पर्श तेजमें न शीत न गर्म पृथिवी वायुमें कठिन कोमल पृथिवी में और पृथिवी के कार्य वस्त्रादि में रहता है २ वायु ३ चक्षु नेत्रों में कृष्ण तारेके अग्रभाग में रहता है बहुत करके तो बाहरके रक्त पीतादि रूप कूं देखता है कभी नेत्रके मीचनेमें भीतरका भी तम प्रतीत होताहै १ चक्षु करके जो रूप देखने में आताहै सो सात प्रकारकाहै शुक्ल नील पीत रक्त हरित कपिश चित्रभेद करके सो पृथिवीमें तो सात प्रकारका और जलमें अभास्वर शुक्ल और तेजमें भास्वर शुक्ल रहताहै २ सूर्य्य ३ रसना जीभके अग्रभागमें रहताहै बहुत करके तो बाहरके मधुरादि रस अनुभव करताहै कभी डकार आने से भीतरके रस का भी ज्ञान होजाताहै १ रसना करके जो रस का अनुभव होताहै सो ६ प्रकार का है मधुर अम्ल लवण कटु कषाय पित्तभेद करके सो पृथिवी में तो ६ प्रकारका और जल में केवल मधुर रहताहै २ वरुण ३ घ्राण नाक के दो स्वर उनके अग्रभाग में दोनों के बीचमें रहताहै बहुत करके तो बाहरके गन्ध को ग्रहण करताहै कभी डकार

आनसे भीतरके गन्ध का भी ज्ञान होजाताहै १ घ्राण करके जो गन्धका ग्रहण कियाजाताहै सो दो प्रकार काहै सुगन्ध दुर्गंध सो पृथिवी में रहताहै २ पृथिवी ३ यहां तक ज्ञानेन्द्रियों का निरूपण किया वाक् जीभमें रहता है १ बोलन २ अग्नि ३ पाणि हाथोंमें रहताहै १ लेना देना २ इन्द्र ३ पाद चरणों में रहता १ चलना फिरना २ विष्णु ३ उपस्थ मूत्र करने का जो शरीर में चिह्न उसमें रहता है १ मैथुन मूत्रत्याग २ प्रजापति ३ वायु मल त्याग करने का जो शरीर में चिह्न उसमें रहता है १ मलकात्याग करना २ मृत्यु ३ यहांतक कर्मेन्द्रियों का निरूपण किया अन्तःकरण हृदय गोलकमें रहताहै सो वृत्तिभेद करके च्यार प्रकारका है मन बुद्धि चित्त अहंकार मन १ संकल्प विकल्प मनोराज्याधि २ चन्द्र ३ बुद्धि १ पदार्थोंका निश्चय करना २ बृहस्पति ३ चित्त १ चिन्तवनकरना २ क्षेत्रज्ञ ३ अहंकार १ यह मैंने किया यह मेरे करने योग्य है २ रुद्र ३ अमान अदम्भ अहिंसा क्षमा आर्जव वैराग्य शम दम मुक्तिकी इच्छा संतोष औदार्यादि ऐसी ऐसी और भी अन्तःकरण की सत्त्वगुणी वृत्ती हैं और तृष्णा दम्भ लोभ अहंकार अशम भोगों की इच्छा चपलता अभिमान रागादि ऐसी ऐसी और भी बहुत अन्तःकरण की रजोगुणी वृत्ती हैं और निद्रा आलस्य प्रमाद मोहादि अन्तःकरणकी तमोगुणी हैं अर्थात् यह सब अन्तःकरण का धर्म है जो संकल्प विकल्पवाली वृत्ति सो मनकी और निश्चयवाली बुद्धिकी और अनुसंधानवाली चित्तकी और अभि-

मानवाली अहंकार की वृत्ति, सत्त्वगुणी वृत्तिसे पुण्याकी उत्पत्ति होती है रजोगुणी वृत्ति से पापकीउत्पत्ति होतीहै तमोगुणी वृत्तिसे मूर्खता बढ़ती है वृथा अवस्था व्यतीत होती है उससे न कुछ इसलोक में प्राप्ति न कुछ परलोक में प्राप्तिहै पीछे तमोगुणी वृत्ति बहुत दुःख की हेतु है ॥

भूत	ज्ञानेन्द्रिय	विषय	ज्ञानेन्द्रियों के देवता	कर्मेन्द्रिय	क्रिया	कर्मेन्द्रियों के देवता
आकाश	श्रोत्र	शब्द	दिक्	वाक्	बोलना	अग्नि
वायु	त्वक्	स्पर्श	वायु	पाणि	लेना देना	इन्द्र
तेज	चक्षु	रूप	सूर्य्य	पद	चलना	विष्णु
जल	रसना	रस	वरुण	उपस्थ	मैथुनादि	प्रजापति
पृथ्वी	घ्राण	गन्ध	पृथ्वी	गुदा	मलत्याग	मृत्यु

श्रोत्रादि इन्द्रियों के जो देवतादिकआदि ॥

उन करकेयुक्त श्रोत्रादि करके जो अपनेअपनेविषयों का अनुभव होना सो जाग्रत् अवस्था यह जो जाग्रत् अवस्था और यहस्थूलशरीर मन इन्द्रियादिका आश्रय इन दोनों का जो अभिमानी जीवसो विश्व कहाजाता है प्रथम भी विश्व विराट्की एकता लिख आयेहैं इसलिये भेदकी निवृत्तिकेलिये विश्वकूं विराट्रूपकरकेदेखे १ जाग्रत् अवस्था में जो भोग देनेवाले कर्म उनका उपरामहुये सन्ते और बाहर श्रोत्रादि इन्द्रियों का उपरामहुये सन्ते जाग्रत् अवस्था में जो देखा और सुना उनहीं संस्कार करके केवल अन्तःकरण करके जो निद्रामें प्रपंचकी प्रतीत सोई स्वप्नावस्था वोही जाग्रत् अवस्थाका अभिमानी जो विश्व सोई स्वप्नावस्था औरसूक्ष्म शरीरका अभिमानी हुआ तैजस कहा

जाता है तैजस हिरण्यगर्भ की एकता है तैजस कूं हिरण्य-
गर्भरूप करके देखे २ जाग्रत् स्वप्नमें जो भोगदेनेवाले कर्म
उनका उपशम हुए सन्ते स्थूल सूक्ष्म शरीरोंका जो अभि-
मान उसके निवृत्ति होने से बुद्धिका कारणात्मामें जो स्थित
होना सो सुषुप्ति अवस्था मैंने न कुछ जाना सुखकरके
मैंने निद्राका अनुभव किया जो जाग्रत् अवस्था में जिस
अवस्थाकी व्यवस्था कहता है वोही सुषुप्ति है तात्पर्य
जिस अवस्था में बुद्ध्यादि सब लय होजाते हैं वोही
सुषुप्ति है वोही स्वप्न अवस्था का अभिमानी जो तैजस जो
यह सोई सुषुप्ति अवस्था और कारण शरीर का अभि-
मानी हुआ प्राज्ञ कहाजाता है प्राज्ञ ईश्वरकी एकता है प्राज्ञ
कूं ईश्वररूप करके देखे यहही प्राज्ञ तीनों शरीर औरतीनों
अवस्थाका अभिमान छोड़कर शुद्ध परमात्मा होजाता है
जो यह उपासनाकरे मैं विराट् वा हिरण्यगर्भ वा ईश्वर
वा शुद्धब्रह्महूं इस उपासनाकरके वैसाही वैसा फलहोता
है अर्थात् विराटादि की उपासना करने से विराट् आदि
होजाता है ऐसी ऐसी उपासना उपनिषद् आदि में भले
प्रकार फलके सहित लिखीहैं और भी प्रणवआदि उ-
पासना हैं शुद्ध ब्रह्मसे लेकर पाषाणआदि मूर्तिपर्यन्त
उपासना हैं जैसी अपनी सामर्थ्य जाने भेद उपासना वा
अभेद उपासना वेद शास्त्रों में से निश्चयकरके करे पर-
मेश्वरकी जैसी उपासना करेगा वैसाही वैसा फल होवे-
गा मुख्य अभेदउपासना शुद्धब्रह्म की है और ईश्वर
हिरण्यगर्भ विराट् की अभेद उपासना और विष्णु शि-
वादि राम कृष्णादिकी भेद उपासना और नामोच्चारणा-

दि पाषाणादि मूर्तियों की अर्चनादि ये सब उपासना उ-त्तरोत्तर गौण हैं जो अभेद उपासना शुद्धब्रह्म की न हो-सके तो भेद उपासना श्रीकृष्णचन्द्र महाराजादि की क-रनेसे ज्ञानद्वारा मुक्तिमें सन्देह नहीं है जैसे कोई सिंह किसी पुरुषकी छायाकूं देखकर दौड़ा उस छायासे पुरु-ष की प्राप्ति होगई इसी प्रकार मणिप्रभासे आदि ले-कर औरभी बहुत दृष्टान्तहैं, अष्टावक्रजी का यह वाक्य है कि जिसकी जो मति है उसकी वैसेही गति होगी अ-र्थात् दासोऽहम् जिसकी मतिहै वो दासही है और ब्र-ह्माहमस्मि यह जिसकी मतिहै वह ब्रह्मही है ब्रह्मविद्ब्रह्मै-व भवति इस श्रुतिसे इसप्रकार मायोपहित ब्रह्मका त-टस्थ लक्षण निरूपण किया इसीकूं अध्यारोप कहते हैं अब इसका अपवाद लिखते हैं अधिष्ठान में भ्रा-न्ति करके ॥

टी०। जिसमें जो वस्तु कल्पित हो जैसे रज्जुमें सर्प ॥

मू०। जो प्रतीत होना उस भ्रान्तिको अधिष्ठान से व्यतिरेक करके भ्रान्तिका अभाव निश्चय करना जैसे शुक्तिमें रजतकी भ्रान्ति प्रतीत होती है शुक्तिका रज-तसे व्यतिरेक करके यह रजत नहीं है शुक्तिहै यह जो रजतका अभाव निश्चय करना इसीकूं अपवाद बाध विलापन भी कहते हैं सो बाध तीनप्रकार का है शास्त्र करके युक्ति करके प्रत्यक्ष करके वेद कहते हैं यह स्थूल सूक्ष्म प्रपञ्च नहीं है इस जगत् भ्रान्तिरूप में ब्रह्मसे पृथक् कुछ नहीं है एक शुद्ध ब्रह्महै इस प्रकार शास्त्र करके प्रपञ्च से ब्रह्मका व्यतिरेक करके प्रपञ्चका अ-

भाव निश्चय करना यह शास्त्रकरके जगत्का बाधहै १ और घटसे मृत्तिकाका व्यतिरेक करके घटका अभाव निश्चय करना इसी प्रकार ब्रह्मसे व्यतिरेक करके सारे प्रपञ्चका अभाव निश्चय करना और जो देखने में आताहै इसकूं भ्रान्ति निश्चय करके ब्रह्ममात्र निश्चय करना यह युक्ति करके जगत्का बाधहै यह जगत् सब ब्रह्म है इसकूं इसप्रकार जानना चाहिये ब्रह्माण्ड में जितने पदार्थ हैं सबमें पांच वस्तु हैं है भान होताहै प्या राहै नाम रूप संस्कृतमें अस्ति भान्ति प्रिय नामरूप से ससा बोलते हैं प्रथम के तीन अंश सच्चिदानन्द ब्रह्मके हैं पदार्थ घटादिके नाश हुये भी नहीं नाश होते हैं और नामरूप ये दो मायाके हैं मायाकूं मिथ्याहोनेसे यह कार्य भी उसका नामरूप दोनों अंश नाश होजाते हैं अन्वय व्यतिरेक करके ब्रह्ममात्र निश्चय किया जाताहै सोई लिखते हैं जैसे एकघट पदार्थ है भान होता है प्यारा है ये तीन अंश उसमें ब्रह्मके हैं और नामघट और रूप काला लाल गोलाकारादि ये दो मायाके अंश हैं है भान होता है प्यारा है यह ब्रह्मका घटमें अन्वय है फिर घट फूट गया मायाके दोनों अंश नाम रूप जातेरहे घटमें मायाके दोनों अंशों का व्यतिरेकहै और ब्रह्मका फिर भी अन्वय है कैसे टूकहैं भान होते हैं प्यारे हैं है भान होते हैं प्यारे हैं यह ब्रह्मके तीनों अंश वैसेही हैं फिर उन टूकोंका काल पाकर चूर्ण होगया मायाके जो अंश नाम रूप थे वे दोनों नाश होगये मायाके दोनों अंशों का चूर्ण में व्यतिरेक है और

ब्रह्मका अन्वय है चूर्ण है भान होता है प्यारा है फिर वो चूर्ण भी काल पाकर नाश होगया नामरूप मायाके दोनों अंश नाश होगये चूर्ण में माया के अंशों का व्यतिरेक है और ब्रह्मका अन्वय है कैसे चूर्ण का अभाव है भान होता है प्याराहै ये तीनों अंश जैसे प्रथम घट में थे वैसेही घटके अभाव में हैं इसीप्रकार सब पदार्थों में अन्वय व्यतिरेक करके ब्रह्म निश्चय करना तीनों अवस्थामें भी अन्वय व्यतिरेक जानना चाहिये जाग्रत अवस्थामें स्वप्न सुषुप्ति का व्यतिरेकहै आत्मा का अन्वय है स्वप्न अवस्था में जाग्रत सुषुप्ति का व्यतिरेकहै आत्माका अन्वयहै सुषुप्ति अवस्था में जाग्रत् स्वप्नका व्यतिरेकहै आत्मा का अन्वयहै तुर्या अवस्थामें जाग्रत् स्वप्न सुषुप्ति का व्यतिरेकहै आत्माका अन्वय है इसीप्रकार बुद्धिमान् सब जगह विचारकरे प्रसंग यथा युक्तिकरके भी जगत्‌का बाधहै उसका यह क्रमहै समस्त स्थूल प्रपञ्च कूं पञ्च महाभूतों में मिलादे यह निश्चय करे पञ्चभूतोंसे पृथक् कुछ नहीं फिर स्थूल भूतों कूं और सूक्ष्म पञ्चभूतों के कार्य इन्द्रिय मनादि कूं पञ्च सूक्ष्मभूतों में मिलादे फिर पृथ्वीकूं जलमें जलकूं तेजमें तेजकूं वायुमें वायुकूं आकाशमें आकाश कूं अहङ्कार में अहङ्कारकूं महत्तत्त्वमें महत्तत्त्व कूं अज्ञान में अज्ञान मिथ्या है जैसे शुक्तिमें रजत फिर अज्ञानकूं शुद्धचैतन्य में मिलादे फिर सदा अभ्यास केवल करके योंही चिन्तवन करतारहै मैं शुद्धब्रह्म सच्चिदानन्द परिपूर्ण नित्यमुक्त हूं जो कभी व्यवहार दशा में प्रपञ्च प्रतीत हो तो वैसेही अन्वय व्यतिरेककरके चैतन्य

से पृथक् कुछ न जाने जैसे किसी मृगकूं रेती में यो भ्रान्तिहुई यो जल है वहां गया नेत्र सींग पैर से भले प्रकार निश्चय किया कि यो जलनहीं है फिर मृग उसी जगह आनकर जो देखताहै तो वहां फिर भी भ्रान्तिसे जल प्रतीत होताहै परन्तु फिर यो जानताहै कि यो जल नहीं है भ्रान्ति है जो पशुकी यो बुद्धि है कि उस मृगतृष्णा में फिर नहीं प्रवृत्त होता है बुद्धिमान् कि जिसने श्रुति स्मृति युक्ति अनुभव करके ब्रह्म का निश्चय किया है वो कैसे संसार को सत्य जानेगा संसारका मिथ्याभास भी उसकूं तबतकहै कि जबतक प्रारब्ध कर्म्म का रचा हुआ जो शरीर नाश नहीं होताहै पीछे उसके मुक्तरूप है युक्ति करके संसार का बाध योहीहै कि संसारकूं मिथ्या समझ लेना २ और मैं ब्रह्म हूं यो महावाक्य श्रवण करके जो हुआ अपरोक्ष ज्ञान और ब्रह्मकूं साक्षात् करके अज्ञान की जो निवृत्ति सो प्रत्यक्ष बाधहै ऐसे तीनप्रकार करके संसार का बाध करना इस कूं अपवाद कहते हैं अध्यारोप अपवाद करके तत्त्वम् पदार्थों का साधन भी हुआहै सोई दिखाते हैं माया से लगाकर स्थूल समष्टि प्रपञ्च जड़ १ और उस करके उपहित चैतन्य २ और दोनों का आधार अनुपहित चैतन्य ३ ये तीनों पृथक् हैं और इन तीनों का तप्तलोहे के पिण्डवत् एक प्रतीत होना यो तत्पद का वाच्यार्थ है और पृथक् जो अखण्ड चैतन्य सो तत्पद का लक्ष्यार्थहै और अविद्यासे लगाकर स्थूल व्यष्टि प्रपञ्च जड़ १ और उस करके उपहित चैतन्य २ और इन दोनों का आधार अनुपहित अखण्ड

चैतन्य ३ ये तीनों पृथक् हैं और इन तीनों का तप्त लोहे के पिण्डवत् एक प्रतीत होना यो त्वम्पद का वाच्यार्थ है और पृथक् अखण्ड चैतन्य त्वम्पद का लक्ष्यार्थ है इनदोनों तत् त्वम् पदका लक्ष्यार्थ कूं ग्रहण करके और वाच्यार्थ कूं मिथ्या जानकर वाच्यार्थ का त्याग करके तीन सम्बन्ध के सहित जहदजहत् लक्षण करके सो यो देवदत्तहै इस लौकिक वाक्यवत् तत्त्वमसि यो महावाक्य अखण्डार्थ का बोधक है तीन सम्बन्धों का अर्थ विना कुछ शास्त्रके पढ़ेहुये भलेप्रकार नहीं जाना जाता है न भले प्रकार भाषामें लिखा जाताहै इसलिये कुछ तात्पर्य लिखे देते हैं सामानाधिकरण्य १ विशेषण विशेष्य भाव २ लक्ष्य लक्षण भाव ३ समानहै अधिकरण जिस का सो सामानाधिकरण्य जो जिसमें रहे उसकूं अधिकरण कहते हैं किसी ने कहा सो यो देवदत्त है सो अर्थात् काशी में तुमने हमने १६ वर्षकी अवस्था गृहस्थ आश्रम में जो देखा था सोई यो अर्थात् अब हरिद्वारमें ३० वर्ष की अवस्थामें जो दीखताहै सो यो देवदत्तहै पूर्व काशी १६ वर्ष की अवस्थादि का और हरिद्वार ३० वर्ष का अवस्थादि का त्याग करके केवल देवदत्त के पिण्ड मात्र में दृष्टि करके यो अर्थ बैठताहै कि सो यो देवदत्तहै कहे हुये अर्थकूं कुछ त्यागदेना कुछ रखलेना इसकूं जहद-जहत् लक्षण कहते हैं सो यो देवदत्त है इस वाक्य का अर्थ जहदजहत् लक्षण करके होसक्ताहै जैसे इसवाक्य में जहदजहत् लक्षणाहै ऐसे और वाक्यों में भी किसी में जहत् लक्षणा किसीमें अजहत् लक्षणाहै तात्पर्य जिस

वाक्य का अर्थ बुद्धि में न बैठताहो कुछ विरुद्ध प्रतीत होता हो तो उस वाक्य का अर्थ लक्षणा शक्ति व्यञ्जनादि करके निश्चय करते हैं उन वाक्योंके बहुत उदाहरण लिखनेमें विस्तार होता है इसलिये थोड़े से उदाहरण लिखते हैं और उनके लिखनेका यहां कुछ प्रयोजन भी नहीं है जहत् लक्षणा वहहै कि कहे हुये वाक्यार्थका त्याग करके और बनाकर लक्षणा करनी जैसे किसीने कहा गङ्गामें गावहै वहां से दूध लेआओ उसने विचारा गङ्गाजी में गांवका होना नहीं बनता इस हेतु से गङ्गाजीके तीरके गांव से दूध लेआया तात्पर्य कहनेवाले का तीरमें था जहत् लक्षणा से यों अर्थ बनसक्ताहै, अजहत् लक्षणा वह है कि कहे हुये वाक्यार्थ कूं ग्रहण करके और भी कुछ अर्थ बनाकर लक्षणा करनी जैसे किसीने कहा कि दूधकी कौवन से रक्षा करते रहना उसने अजहत् लक्षणा करके कौवन से भी रक्षाकरी औरों से भी रक्षाकरी क्योंकि तात्पर्य दूधकी रक्षा में था, जैसे पङ्कजका अर्थ यों है कि जो कीच से उत्पन्न हो सो पङ्कज विचारो कीच से बहुत वस्तु कसेरू आदि उत्पन्न होते हैं परन्तु पङ्कज की शक्ति कमल में ही है, वाक्यार्थ के तात्पर्य कूं समझना यो व्यंजना है जैसे किसी स्त्रीका पुरुष विदेशकूं जाताथा स्त्री ने चलते समय प्रार्थना करी कि जहां आप का जानाहो उसी जगह मेराभी जन्म होवे अर्थात् आपके जाते ही मेरे प्राण छूट जावेंगे, प्रसङ्ग सामानाधिकरण्य कथासों सुनो सो और यो पद इन दोनोंका जैसे देवदत्तका पिण्ड अभि-

करण है ऐसे तत् त्वम् इन पदोंका शुद्ध चैतन्य अधि-
करण है तत् त्वम् पदों का सामानाधिकरण्य संबन्ध है,
जैसे सो यो ऐसा कहो वा यो सो ऐसा कहो ऐसे तत् त्वम्
ऐसा कहो वा त्वम् तत् ऐसा कहो यो तत् त्वम् पदार्थों
का विशेषण विशेष्यभाव सम्बन्ध है, जैसे सो यो इन
शब्दों का और इनके अर्थोंका लक्ष्य लक्षणभाव सम्बन्ध
है सो ये दोनों पद तो लक्षणहैं और इन लक्षणोंसे जो
लखाजावे सो लक्ष्य देवदत्त का पिण्डहै ऐसे तत् त्वम्
पदों का और उनके अर्थोंका लक्ष्य लक्षणभाव सम्बन्धहै
तत् त्वम् ये पद तो लक्षणहैं और इन लक्षणोंसे जो लखा
जावे सो लक्ष्य एक शुद्ध चैतन्यहै इस प्रकार तीन स-
म्बन्ध करके अखण्डार्थका बोध होताहै जीवकी जो उ-
पाधि अविद्या अल्पज्ञाति और ईश्वरकी उपाधि माया
सर्वज्ञादि इन दोनों उपाधियोंका जहदजहत् लक्षणासे
त्याग करके तात्पर्य तत् त्वम् पदों के वाच्यार्थका त्याग
करके लक्ष्यार्थका ग्रहणकरके केवल एक शुद्ध चैतन्यमें
लक्षणा करनी तब तत्त्वमसि इस महावाक्य का अर्थ
अखण्डार्थ निश्चय होताहै अखण्डार्थ किसकूं कहतेहैं
सुनो स्वगत १ जैसे वृक्ष में पत्र पुष्पादिका भेद और
सजातीय २ जैसे अनार आम्रादि का भेद और विजा-
तीय ३ जैसे वृक्ष और पाषाणादिका भेद इन तीन भेद
करके जो रहित सो अखण्ड अथवा देश काल वस्तु क-
रके परिच्छिन्न न हो सो अखण्ड सारे व्यापक होनेसे
तो ब्रह्म देशपरिच्छिन्न नहीं और नित्य होनेसे कालपरि-
च्छिन्न नहीं और सबका आत्माहोने से वस्तुपरिच्छिन्न

नहीं जो इस शरीरमें सच्चिदानन्द भान होता है वोही ब्रह्म है और जिसकूं ब्रह्म कहते हैं वोही सच्चिदानन्द है जब ऐसा ज्ञान हुआ तब त्वम् पदका अर्थ जो जीव समझ रक्खा था वो उसी समय जाता रहता है और तत् पदका अर्थ जो परोक्षथा तोभी उसी समय अपरोक्ष होजाताहै फिर इसज्ञानसे जो होता है सो सुनो जो प्रथम त्वम् पदका अर्थ जीव समझ रक्खाथा सोई अपरोक्ष परमानन्दरूप करके शेष रहजाता है इसप्रकार तत्त्वमसि जो महावाक्यादि उनका अर्थ श्रवण करने से और मनन निदिध्यासन करने से जो हुआ अपरोक्ष ज्ञान उस ज्ञान करके अज्ञानकी जो निवृत्ति और परमानन्दकी प्राप्ति इसीका नाम मोक्ष है॥ इति श्रीद्वितीयोऽध्यायः समाप्तः २॥

अथ तृतीयोऽध्यायः॥

कर्मकाण्डी और उपासनावाले स्वर्ग वैकुण्ठादि की प्राप्ति कूं सालोक्य, सामीप्य, सारूप्य, सायुज्य नाम करके मुक्ति कहतेहैं सो नाम मात्र मुक्तिहै अनित्य होनेसे साक्षात् मुक्ति नहीं जैसे किसी पुरुषकूं कहना कि यो पुरुष सिंहहै वो पुरुष साक्षात् सिंह नहीं उसमें सिंहके से गुणहैं ऐसे साक्षात् मुक्तिमें जोगुण दुःखोंकी निवृत्ति और परमानन्दकी प्राप्ति ये दोनों उन में भी थोड़े थोड़े हैं दूसरे अध्याय के अन्त में जो मुक्ति कही है सो मुक्ति दो प्रकारकी है जीवन्मुक्ति १ विदेहमुक्ति २ जीवन्मुक्ति तीन प्रकारकीहै श्रेष्ठ १ मध्यम २ कनिष्ठ ३ जीवते हुये उस आनन्दकूं सदा प्राप्त रहना अर्थात् स्वभाव करके निर्विकल्प

समाधि रहनी श्रेष्ठ जीवन्मुक्ति १ प्रयत्न करके बहिर्मुख अन्तःकरणकी वृत्तियोंकूं निरोध करना मध्यमजीवन्मुक्ति २ यद्यपि दुःख सुखादि अन्तःकरण के धर्म होनेसे आत्मा के साथ उनका सम्बन्ध नहीं है यो विचार भी है तो भी दुःखादि के सम्बन्ध करके अन्तःकरणका व्याकुल हो जाना यो कनिष्ठ जीवन्मुक्ति ३ देहपातके पीछे उस आनन्दकूं प्राप्त होना विदेहमुक्ति, श्रेष्ठ जीवन्मुक्तिका यो नियम नहीं कि सब ज्ञानियों कूं श्रेष्ठ जीवन्मुक्ति हो जैसे औषध करने से रोगकी शान्ति होती है ऐसे प्रयत्न करने से श्रेष्ठ जीवन्मुक्ति भी सम्पादन होसकी है परंतु कुछ नियम नहीं कि औषध करने से नियम करके रोग जाता रहता है पुरुषार्थवादी तो यों ही कहते हैं कि प्रयत्न मुख्य है जो श्रेष्ठ जीवन्मुक्ति किसी प्रतिबन्ध कर के सम्पादन न होसके तो कुछ विदेह मुक्ति में संदेह नहीं इस बातकूं सिद्ध करते हैं ज्ञान की ७ भूमिका हैं तीन प्रथमकी ज्ञानकी साधन भूमिका हैं इसलिये वे भी ज्ञान की भूमिका कही जाती हैं चौथीमें अपरोक्ष ज्ञान होताहै पिछली तीन जीवन्मुक्ति भूमिका हैं प्रथमका लक्षणयोहै शौच स्नानादि आचार गङ्गाजी से आदिलेकर तीर्थोंका सेवन विष्णु शिवादिकी पाषाणादि मूर्त्तियों की पूजा अश्वमेध यज्ञसे आदि लेकर यथाशक्ति ब्राह्मण अतिथि अभ्यागतोंकूं अन्न वस्त्रादि देने ऐसे ऐसे और भी बहुत कर्म हैं यो प्रथम भूमिका १ सगुण परमेश्वरके गुणानुवाद सुनकर परमेश्वर में अनुराग होना और परमेश्वर के भक्त जो साधु ब्राह्मण उन में प्रीति होनी और सन्त वाणी

शरीर धन से उनका सत्कार करना जो कदाचित् साधु अपने घर चलेआवें तो मनकूं आनन्द होना यो जानना हमारा बड़ा भाग्य है यो मन से सत्कारहै और वाणी से ऐसा बोलना महाराज आपका आना बहुत सुन्दर हुआ आप जंगम तीर्थ हो हमारे पवित्र करने के लिये आप आयेहो और शरीर से हाथ जोड़कर खड़ा होजाना चरण सेवा से आदि लेकर टहल करनी अथवा और जगह महात्मा ठहररहेहों वहां जाकर सेवाकरनी और धन से यथाशक्ति अन्न वस्त्रादि देने और नित्यानित्य वस्तु का विचारना ऐसे ऐसे कर्मों से आदि लेकर भी बहुत कर्म्म हैं यो दूसरी भूमिका २ संसार के पदार्थोंकूं दुःख रूप अनित्य जानकर उनसे वैराग्य होना जैसा श्रीरामचन्द्रजी कूं वैराग्य हुआ है वाशिष्ठ ग्रन्थ में वो कथा प्रथमही वैराग्य प्रकरण में प्रसिद्ध है और साधन चतुष्टयसम्पन्न होकर वेदान्त शास्त्रका श्रवण करनायो तीसरी भूमिका ३ शुक्ति में रजतवत् संसारकूं मिथ्या जानकर अपने निजस्वरूपका बोध होजाना कि मैं वोहूं चौथी भूमिका योहि विदेह मुक्तिमें हेतुहै चौथी भूमिका वाले का लक्षण योहै कि जैसे कोई पुरुष समुद्रके तीर खड़ाहै जो जल की तरफकूं देखताहै तो जलही जल दीखताहै और जब पीछेकूं देखताहै तब मन्दिर वृक्षादिही दीखते हैं ऐसे जब वो पुरुष अपने स्वरूप का अनुसंधान करता है तब संसार का अभाव और अपना स्वरूप साक्षात् प्रतीत होताहै और व्यवहार के समय संसारके दुःखसुख शोक मोहादि जैसे पहले थे वैसेही भुने अन्नवत् प्रतीत

होते हैं जैसे भुना अन्न भूख दूर करने कूं समर्थ है जमनेकूं समर्थ नहीं ऐसे उस ज्ञानी कूं व्यवहार सुखदुःखादि का हेतु है परन्तु जन्मका हेतु नहीं और अज्ञानीकी बराबर उसकूं दुःख सुख भी नहीं होते इस बातकूं भी अभी आगे दृष्टान्त देकर सिद्ध करेंगे चौथी भूमिकामें शरीर यातो चाण्डाल के घरमें या काशी में छूटो आनन्द पूर्वक छूटो या मूर्च्छा रोग होकर लोटते पोटते छूटो मुक्ति में सन्देह नहीं वो मुक्त उसी समय होगया जिस समय उसको ज्ञान हुआ मूर्च्छादि होने से ज्ञानका नाश नहीं होता जैसे विद्याकूं स्वप्न सुषुप्ति मूर्च्छादि में भूल भी जाता है परन्तु कुछ अगले दिन नहीं बढ़ता ४ पांचवीं भूमिकाका लक्षण यो है कि जैसे कोई पाव कोश समुद्रमें आधे शरीर जलमें खड़ा हो उसकूं बहुत विचारने से समुद्रके तीरके मन्दिर वृक्षादि देखा करते हैं वैसे उसकूं संसारका व्यवहार बहुत किसीके सुनने देखने से प्रतीत होता है ५ छठी भूमिकामें गले तक जल की कल्पना करलेनी ६ सातवीं भूमिकामें जलमें प्रवेश होजाना सातवीं भूमिकावाले का शरीर हद बीस दिन रहता है क्योंकि भोजनादि का अभाव होजाता है ७ चौथी भूमिकावाले से लेकर सातवीं तक एकसे एक सिवाय ब्रह्मवित् कहे जाते हैं, ब्रह्मवित् ४ ब्रह्मविद्वर ५ ब्रह्मविद्वरीयान् ६ ब्रह्मविद्वरिष्ठ ७ मूर्ख योंही कहते हैं कि जैसा हमने पांचवीं छठीं सातवीं भूमिकाका लक्षण लिखा है ऐसे ज्ञानी होते हैं और चौथी भूमिकावाले में बहुत तर्क करते हैं उनके पूर्व पक्षके तर्कों का खण्डन वेदान्त शास्त्र

में बहुत लिखा है कुछ एक लेशमात्र यहां भी लिखते हैं। शंका। कि जो खावे पीवे नहीं और शरीर इन्द्रियादि करके चेष्टा न करताहो सो ज्ञानीहै। उत्तर। ज्ञान क्या हुआ रोगहुआ ऐसे तो रोगी होतेहैं रोगियोंकूं भी ज्ञानी कहा चाहिये। शंका। जिसकूं दुःख सुख न प्रतीत होता हो सो ज्ञानी है। उत्तर। दुःख सुखका अभाव जड़ पदार्थों में होताहै वे ज्ञानी हैं। शंका। संसारका अनुभव न होना यो ज्ञानका लक्षणहै। उत्तर। संसार तो सुषुप्ति मूर्च्छा प्रलयादिमेंभी अनुभव नहीं होता वहांभी तो संसारका बाधहै। प्रश्न। फिर संसारका क्या बाध है और क्या ज्ञानका लक्षण है। उत्तर। संसार का योही बाध है कि जो दूसरे अध्यायमें तीन प्रकार का बाध लिख आये हैं और ज्ञान का भी योही लक्षण है कि जबतक जो शरीर प्रारब्ध कर्मका रचा हुआ नष्टनहीं होता तबतक संसारकूं मिथ्या समझना तात्पर्य्य जबतक संसारमें स्वरूपसे मर्दन नहीं होसका क्योंकि मिथ्या पदार्थकूं मिथ्या जानने से उसका अभाव नहीं होता जैसे बाजीगर के पदार्थ मिथ्या जाने से स्वरूप करके मर्दन नहीं होते इस प्रकार यह संसार रहता है परन्तु देहपात के पीछे स्वरूप से भी मर्दन होता है इस में वेद प्रमाण है अन्यथा वशिष्ठादि ब्रह्मज्ञानीथे इसमें क्या प्रमाणहै। शङ्का। ज्ञानतो होगया फिर प्रारब्ध कर्म्मका फल दुःखादि क्यों न नाश हुआ। उत्तर। तीरने पुरुषकूं भेदन तो करदिया आगे क्यों चला और दूसरे कुम्हार ने बरतन उतारने के लिये चाक घुमाया बरतन तो उतार लिया फिर चाक

क्यों घूमता है । शङ्का । ज्ञान ने संसार कूं स्वरूप से और प्रारब्धकर्म्म कूं क्यों न नाश किया । उत्तर । प्रारब्ध कर्म्म और यो संसार मिथ्या भास पुरन्दे की नाईं कुछ ज्ञान के विरोध नहीं प्रत्युत ज्ञान कूं उत्साह बढ़ाने वाले हैं जैसे किसी पुरुष की मारी हुईं हजारों लाशें पड़ी हों वो शूर उनको देख देख आनन्द होता है । शङ्का । जो ज्ञानी पूर्ववत् संसार के भोग भोगता रहा तो ज्ञानी अज्ञानी में क्या भेद हुआ । उत्तर । ज्ञानी रागपूर्वक संसार के भोग नहीं भोगता जैसे किसीके शिरपर कोई बेगार रखदे तो क्या बेगार के उठाने में उसको उत्साहहै । शङ्का । बेगारी कूं तो दुःख होता है जो ज्ञानी कूं भी दुःख हुआ तो ज्ञानका क्या फल हुआ । उत्तर । ज्ञानीका दुःख मुक्तिके आनन्दमें दबा रहताहै जैसे दो बेगारी हैं एक जानता है कि मैं दोघड़ी में छूटूंगा दूसरा नहीं जानता कि मैं कब छूटूंगा हे वादी ! विचार देख दुःख दोनों का सम प्रतीत होताहै परन्तु जानने वाले कूं थोड़ा दुःख है नहीं जाननेवाले कूं बहुत दुःख है ऐसे ज्ञानी अज्ञानी के दुःख में बहुत भेदहै । शङ्का । तुमतो जैसे प्रथमथे वैसेही अबभी दीखते हो ज्ञानहोकर कुछ और प्रकारके न हुये । उत्तर । जिस समय तुमकूं रज्जु में सर्प की भ्रांति हुईथी उसकूं देखकर कँपने लगे थे और गिर कर चोट लगगई थी फिर किसीके उपदेश और अपनी युक्तिसे रज्जुका अनुभव किया तुम कहो कि आप की सूरत भी बदली थी कहता है कि मेरी सूरत तो नहीं बदली थी परन्तु अन्तःकरण की वृत्ति बदलगई थी ।

उत्तर। फिर हमारे अन्तःकरणके साक्षी क्या तुमहो जैसे भ्रांति समय तुमकूं कंप थी पीछे निवृत्त होगई सूरत न बदली ऐसे हमकूं भ्रांति थी सो निवृत्त होगई अपने अन्तःकरण के हम साक्षी हैं। शंका। तुम कहतेहो जो जगत् अज्ञानका कार्य्य है वो अज्ञान तो नाश होगया कार्य्य उसका कैसे बना रहा। उत्तर। भ्रांति समय जो तुमकूं कँपातीथी और गिरकर चोट लगीथी फिर जिस समय वो भ्रांति दूरहुई कार्य्य उस भ्रांति का वो कंप और वो चोट उसीसमय जाती रही थी कहताहै कंप तो दोघड़ीके पीछे और चोट दशदिनके पीछे गई थी। उत्तर। आश्चर्य्य की बात है जो घड़ीभर भ्रान्ति नहीं रही उसका कार्य तो दशदिनके पीछे गया और हमारा अज्ञान परार्द्ध संख्यासेभी परे का था वो नाश हुआ है उसके कार्य्यकूं कहते हो कि उसी समय क्यों न जाता रहा शरीर पातके पीछे कार्य भी नाश होजावेगा और भी बहुत दृष्टान्त हैं वृक्ष कटने के पीछे वैसाही हरा प्रतीत होता है और किसी वस्त्र वा पात्र में गन्ध रक्खी हो पीछे निकालने के भी कई घड़ी गन्ध बनी रहती है और किसीकूं स्वप्नमें सिंहने भड़पाया वो जाग उठा देखता है कि सिंह नहीं परन्तु कम्प दो घड़ी पीछे जाती है। शङ्का। यो जो तुम भोग भोगतेहो ये ज्ञान कूं नष्ट करदेंगे। उत्तर। जीते हुये चूहेने बिलाई को न मारा तो मरा क्या मारेगा और जैसे कोई वज्र लगनेसे न मरा क्यों वो तुली की तीरसे मरेगा जिसकाल में अज्ञान बटाहुआ था उससमय तो ज्ञान नाश हुआ नहीं अब तो उस

अज्ञानकूंज्ञानने नाश करलिया उसका कार्य्य ये अन्न भक्ष-णादि तुच्छ पदार्थ ज्ञानकूं क्या नष्ट करेंगे। और दूसरे जो पुरुष चोर जार कूं जानताहै वे चोर जार उसके बुरे होने का प्रयत्न नहीं करते और डरते रहते हैं और जो प्रयत्न करें भी तो वो चैतन्य हैं ऐसे ज्ञानी इन भोगरूप चोरों को जानता है और तीसरे कोई स्त्री नेत्र शरीरादि करके तो सुन्दरहो परंतु उसकी उपस्थ इंद्रिय में गरमीका बिकार-रहो जो उस बिकारकूं जानता है उसकूं उस स्त्री के हाव भाव कटाक्ष नहीं मोहते न वो स्त्री उसके सामने हाव भाव कटाक्ष करती है ऐसे ज्ञानी इस मायारूपी स्त्री के अवगुणोंकूं जानता है। शङ्का। जो तुम सदाब्रह्माहमस्मि ब्रह्माहमस्मि ऐसा अनुसंधान न करते रहोगे तब जो ब्रह्म-ज्ञान नष्ट होजावेगा। उत्तर। तुम ब्राह्मणोऽहम् ब्राह्मणोऽहम् इसका सदा अनुसंधान न करोगे तो भूलजावोगे जैसे तुम अपनी जातिकूं नहीं भूलते वैसे हमने एकबेर बस्तुका निश्चय करलिया है वो हमारा ज्ञान कैसे जाता रहेगा और आपका निश्चय तो झूंठा है एक युक्तिसे जाता रहता है योंभी कहता है कि मेरा शरीर है और योंभी क-हता है कि मैं ब्राह्मणहूं कितना बिरोध है ऐसा निश्चय तो आपका बिना अनुसंधान के बना रहेगा और हमारा जो निश्चयहै कि सहस्रों श्रुति स्मृति युक्ति और अनुभव करके और तुम सदृश बादियों के मतोंकूं खण्डन करके जो निश्चय किया है वो बिना अनुसंधानके जातारहैगा। शङ्का। जिनकूं शाप अनुग्रहकी सामर्थ्य होती है वे ज्ञानी हैं। उत्तर। शाप अनुग्रह ज्ञानका फल नहीं तप

का फल है। शङ्का। ज्ञान बिना तपके कैसे हुआ। उत्तर तप। दो प्रकार का है एक तप शाप अनुग्रह की सामर्थ्य करादेता है और एक तप ज्ञानकूं उत्पन्न करता है। शङ्का। व्यास वशिष्ठ सनकादि भी तो ज्ञानी हैं। उत्तर। उनके दोनों प्रकारका तप है हमारे एकही है दूसरे तप न होने में कुछ ज्ञानी की क्षती नहीं है जैसे जौहरी वस्त्रादिकी परीक्षा न करसके तो उस जौहरी की क्या क्षती है ऐसेही गण्डा तावीज़ प्रेतादिकों के मन्त्रादि न जानता हो तो क्या ज्ञानीकी क्षती है तात्पर्य ऐसी ऐसी तर्कोंका खण्डन बहुत वेदान्तशास्त्र में लिख रहाहै मुक्ति की इच्छावाला ऐसे २ वादोंमें बुद्धि को न समाप्तकरे केवल वेद वाक्य में विश्वासकरे और जो पुराणादि में जड़भरतादि लिखे हैं कोईकहे कि ऐसे ज्ञानी होते हैं तो क्या उसके मुखमें मारने के लिये श्रुतिरूप वज्र नहीं है तात्पर्य्य वेद ऐसा भी कहते हैं जैसे जड़भरतादि हुये हैं और ऐसाभी कहते हैं ज्ञानी अपनी अवस्था वालों के साथ बिहार करता हुआ और सवारियोंमें बैठाहुआ स्त्रियोंके साथ रमता हुआ वो ज्ञानी अपनी दृष्टिमें कुछ नहीं करताहै वशिष्ठ याज्ञवल्क्य से आदि लेकर बहुत प्रसिद्ध हैं और जनक चुड़ालादि बहुत क्षीतक ज्ञानीहुये हैं क्या सब जड़भरतवत् आचरण करते थे तात्पर्य यों है मूर्खलोग वे शास्त्र के एक २ देशकूं सुनकर वेदशास्त्र के तात्पर्यकूं न जानकर कुछ कुछ बकते हैं उनका निश्चय उनके रहो हम को क्या काम है हम सिद्धान्त कहते हैं प्रथम तो जड़भरतादिभी खाना सोना आदि त्याग करके काष्ठ पाषाणवत् नहीं रहे सङ्ग

की भांति से उदासीन रहतेथे क्योंकि सङ्गी लोगों करके बाध होजाताहै और निस्सङ्ग सुखकूं प्राप्त होता है इसलिये सदा सुख की इच्छावालों ने सङ्ग त्याग देना ज्ञान की परीक्षाके लिखे वैराग्य उपरति बोधकूं हेतु १ स्वरूप २ कार्य ३ अवधि ४ इन चार चार भेद करके लिखते हैं वैराग्य के हेतु आदि ये हैं॥ शब्दादि विषयोंमें दोषदृष्टिहोनी १ त्यागदेना २ फिर भोगोंमें दीनता न होनी ३ ब्रह्मलोककूं तृणवत् समझना ४ उपरतिके हेतु आदि ये हैं ॥ यमनियमादि १ अंतःकरणका निरोध २ व्यवहारका बहुत कम होजाना अर्थात् खाने सोने मेंभी सङ्कोच ३ सुषुप्तिवत् जाग्रत् अवस्था रहनी ॥ बोधके हेतु आदि ये हैं ॥ श्रवणादि १ तत्त्व मिथ्याका जानलेना २ फिर ग्रन्थिका उदय न होना अर्थात् देहादिमें अहंबुद्धि न होनी ३ जैसे प्रथम देहादिमें अहंबुद्धि थी वैसीही स्वरूप में दृढबुद्धिहोजानी ४ मुक्तिकी इच्छावालों के वैराग्यादि के हेतु आदि तारतम्यता करके रहते हैं क्योंकि सबके कर्म एक प्रकारके नहीं इन सबमें कि जो वैराग्यादिके हेतु आदि लिखे हैं उनमें तत्त्व मिथ्याका जानलेना जो बोध का स्वरूप लिखाहै योही मुक्तिका कारणहै और सब ज्ञानियोंके योही एकरस है जो वैराग्यादिके हेतु आदि ऊपर लिखे हैं वैसे जो किसीकेहों तो बहुतपुण्य का फलहै उससे सिवाय कोई पुण्य नहीं और जो किसी प्रतिबन्धकरके तीनों एक जगह न देखने में आवें तो उनके फल ऐसे होगें कि वैराग्य उपरति तो पूर्णहो बोध किसी प्रतिबन्ध से नहो तो मुक्ति नहीं होगी तपकेबलसे ब्रह्म-

साकारकी प्राप्ति होगी और जो बोधहै वैराग्य उपरति इस जन्ममें न देखने में आवें तो मुक्ति निश्चय होगी परन्तु जबतक यह शरीर रहेगा हर्ष शोकादि आभास मात्र बने रहेंगे बोधका स्वरूप सब ज्ञानियों के एकरस है वैराग्य उपरति में तारतम्यताहै जैसे १०० गौ दूध सबका एकरङ्ग एकरस और व्यक्ति दुबलापन मोटापन स्वभावादि पृथक् २ ऐसे १०० ज्ञानी ज्ञान सबका एकरस और व्यवहार चलन स्वभावादि सत्त्वादि गुणों की उपाधिसे पृथक् पृथक् अर्थात् किसी के सत्त्वगुण बहुत किसी के रज तम बहुत हैं सत्त्वगुणी शुकदेव, वामदेव, जड़भरत, सनकादिक और रजोगुणी जनक, चुड़ालादि और तमोगुणी दुर्वासादि सत्त्व रज तमोगुणी बहुत बर्तने से सत्त्वगुणी रजोगुणी तमोगुणी कहे जाते हैं परन्तु तीनोंगुण सबके तारतम्यता करके बर्तते हैं॥ ज्ञान के होने और वैराग्य उपरति सिद्धि लक्ष्मी आदि के न होनेमें यह व्यवस्थाहै ज्ञान उपरति वैराग्य सिद्धि लक्ष्मी आदि पुण्यका फल है जिसके पूर्ण पुण्य हुआ जैसे जलसे घट भरा रहता है उस के तो वैराग्य उपरति ज्ञानसिद्धि लक्ष्मी आदि सब होते हैं और जो केवल ज्ञान हो वैराग्यादि न हो तो उस से भी थोड़े पुण्यका फल है और जो ज्ञान न हो वैराग्य उपरतिहो उससे भी थोड़े पुण्यका फल है और जो वैराग्य ज्ञान तीनों न हों सिद्धि लक्ष्मी आदि हों उससे भी थोड़े पुण्यका फलहै और जो सिद्धिवैराग्यादि न हों केवल लक्ष्मी राज्यादि हों उससे भी थोड़े पुण्यका फल है राजा

से लगाकर कङ्गाल पर्यन्त पुण्यकी तारतम्यता कल्पना करलेनी पुण्य की तारतम्यता से ज्ञानियों के वैराग्यकी भी तारतम्यता कल्पना करलेनी जो तीनों वैराग्यादि किसीज्ञानी के देखने में आवें तो वो ज्ञानी ऐसाहै जैसा मनुष्योंमें चक्रवर्त्ती राजा जैसे जड़भरत शुकादिहैं ऐसा नहीं समझना कि जो ऐसेही हों वोही ज्ञानी हैं और ऐसोंही की मुक्ति होती है। शङ्का। फिर ऐसे पुरुषोंकी शास्त्र में बहुत प्रशंसा क्यों लिखी है। उत्तर। ऐसे पुरुषोंकूं जीवन्मुक्तिका बहुआनन्द रहता है जैसे चक्रवर्त्ती राजाकूं मनुष्यानन्द वहुत रहता है और जैसे राजासे जो कमलक्ष्मी आदि वालेहैं उनकूं भी तो आनन्द तारतम्यता करके रहता है और वेभी तो मनुष्य ही कहे जाते हैं ऐसे वैराग्य उपरति में कम जो ज्ञानी हैं वे भी ज्ञानी हैं अज्ञानी नहीं। शङ्का। ज्ञानी के लक्षण शास्त्र में ऐसे ऐसे लिखे हैं क्रोध शोक भय न होना जितेन्द्रिय, क्षमा, वैराग्य, दया, निर्लोभ, दाता सबका प्यारा होना॥

टी०। दाता होना अर्थात् अभय दान देना अभयदान दो प्रकार का है एक यह कि अपने शरीर बाणी मन से किसी कूं भय न देना दूसरे ज्ञान का उपदेश करके संसार के दुःखों से अभय करदेना॥

मू०। येज्ञानके चिह्नहैं ऐसे २ वाक्यों की क्या गति होगी। उत्तर। ऐसे २ वाक्य प्रथम तो ज्ञान होने के लिये और ज्ञान के पीछे जीवन्मुक्ति की सिद्धिके लिये ताकीद में हैं एकादशी के ब्रतवत् नियम नहीं जो

एक दाना भी अन्नका मुखमें जापड़े व्रत टूटजावे ऐसे ही जो कभी किसी पापके उदय होने से ज्ञानी कूं काम क्रोध आजावे तो ज्ञानही जाता रहता जिस काल में सनकादि महाज्ञानी श्रीनारायणजी के मिलने के लिये वैकुण्ठकूं गये थे नारायण के पार्षदों ने जब उनकूं भीतर जाने के लिये मनेकिया तब उनको क्रोध आगया फिर शाप देदिया अर्थ से योंभी प्रतीत होता है कामके विना क्रोध नहीं आता बिचारो ज्ञान उनका नहीं जाता रहा और यह जो शंकाकरे कि वे ईश्वर थे समर्थ थे अर्थात् वे ईश्वरकी टीकारक कोटीमें हैं तो मनुष्य कोटीमें ऐसी २ अनेक कथा पुराणोंमें वेदों में दुर्वासादि की प्रसिद्ध हैं और दूसरे यह कि मुनिका न्याय है जो समर्थ पुरुषोंकूं ईश्वरोंकूं काम क्रोध आये तो जीवका तो यह अनादि स्वभावहै जीवको काम क्रोध के आजाने में क्या आश्चर्य है। शंका। ज्ञानीका दूसरेकूं उपदेश करनेसे क्या काम है। उत्तर। ज्ञानीकूं जगत्‌में यहही एक करने के योग्य है कि जैसे बने अज्ञानी कूं ब्रह्मतत्त्व का उपदेश करे। शंका। श्रीभगवान् तो यह कहते हैं कि कर्म संगी पुरुषोंकूं कर्मसे न हटावें। उत्तर। श्रीभगवान् ने कर्मसंगी पुरुषोंका उसी जगह बिशेषण दे रक्खाहै कि अज्ञानी कर्मसंगी कूं ब्रह्मतत्त्वका उपदेश न करे। शंका। ज्ञानियों की व्यवस्था तो ऐसी २ सुनी जातीहै कि जब उनको ज्ञान हुआ फिर वे किसीसे न मिले मौन होकर उत्तराखण्ड को चले गये। उत्तर। यह लक्षण अवधिका है कोई ऐसाभी हुआहो परन्तु सब का नियम नहीं और

दूसरे सत्ययुगादि ऐसे समयथे कि अस्थि आदिमें प्राण बसे रहतेथे और कुछ कवि पुरुषों का नियम है कि बढ़ा-कर लिखते हैं और जो यह न मानो तो ग्रंथोंका बनना उपदेश करना यह विना प्रवृत्तिके कैसेबने विद्या का लोपहुआ चाहिये वेद श्रीकृष्णचन्द्र महाराज कहते हैं कि ज्ञानके लिये गुरुजी के पास जावे हे अर्जुन! तुमको वे गुरु उपदेश करेंगे देखिये जो प्रवर्त होंगे तो उपदेश करेंगे और जो बोलें बतलावेंगे नहीं दृष्टांत युक्ति न देंगे अथवा उनका पताही न लगेगा तो बोध कैसे होगा वेद कहते हैं कि आचार्यवान् पुरुष ब्रह्मकूं जानताहै ता-त्पर्य यहही है कि मूर्ख वेदशास्त्रके हृदयकूं न जानकर कुछका कुछ बकताहै ऐसे २ सिद्धांत शारीरक भाष्य पंच-दशी आदि ग्रंथोंमें श्रुति स्मृति प्रमाण देदेकर सिद्ध कर रक्खे हैं जिस किसी के संदेह हो वहां से निश्चय करे और जिसकी गुरु वेदांत में श्रद्धा है वहतो संशय विपर्यय रहित होकर निश्चय मुक्ति होगा ॥

इति श्रीआनन्दामृतवेदान्तशास्त्रेतृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

अथ चतुर्थोऽध्यायः ॥

जो किसी पुरुष कूं किसी पापके प्रतिबंधसे महावाक्य का अर्थ मनन कर अपरोक्षका ज्ञान न होवे तो फिरसा-धन करे प्रथम अध्यायमें जो विवेकादि चार साधनकहे हैं मुख्य सार वेही हैं उन्हीं चारकूं आचार्यों ने नाना प्रकार से लाखों श्लोकों में और भाषा में कहा है उनहीं चारोंका अर्थ स्फुटि होने के लिये उनहीं चार साधनोंकूं

अब और प्रकारके लिखते हैं ज्ञान के साधन दो प्रकार के हैं अंतरंग १ बहिरंग २ अन्तरंग मुख्यहै बहिरंग गौण है बहिरंग साधन ये कहलाते हैं शौच स्नान सन्ध्या वंदन वेद शास्त्रोंका पढ़ना पाठ करना तर्पण हवन करना अतिथि अभ्यागतका पूजन करना सेवा करनी अन्नदेना ऐसे २ और भी बहुत नित्यकर्म हैं उनके न करने में पापहै करने से पापकी निवृत्ति होती है * और पुत्रादि के जन्मादिमें जातकर्म श्राद्धादि करने पूर्णमासी संक्रांत्यादि में तीर्थोंमें जाना स्नान दान करना निष्काम यज्ञ करने ऐसे ऐसे औरभी बहुत नैमित्तिक कर्म हैं, और कोई अपनेसे खोटाकाम शास्त्रसे विरुद्ध होजावे उसकी निवृत्ति के लिये चान्द्रायणादि व्रत और श्रीगङ्गा जी में स्नानादि करने ऐसे २ औरभी प्रायश्चित्त कर्म हैं, और बद्रीनारायणादि के दर्शन करने तीर्थोंका सेवन करना पाषाणादि मूर्तियोंकू पूजना परिक्रमा करनी शंख घण्टादि बजाने चौके धोतीसे रोटी खानी यह खाना यह न खाना इस बरतन में खाना इस बरतनमें न खाना इसके हाथका खाना इसके हाथका न खाना यह ब्राह्मण यह क्षत्रिय वर्णादि यह ब्रह्मचारी यह गृहस्थी आदि आश्रमी इसप्रकारके और भी बहुत बहिरंग साधन हैं पुराणों में धर्मशास्त्रादि में उनका बहुत विस्तार है वहां से सुनकर सम्पादन करे परमप्रयोजन उनका अन्तःकरणकी शुद्धि है बहिरंग प्रथम मन्दबुद्धि के लिये है अन्तरंग बुद्धिमान् के लिये है बहिरंग साधन अन्तरंग साधनों की इच्छा रखते हैं अन्तरंग बहिरंग साधनों

की इच्छा नहीं रखते और ऐसा जो कहते हैं कि कर्म-काण्ड और उपासनाकाण्ड ज्ञानके साधन हैं वहां जो व्यवस्था है जो उपासना इसप्रकारकीहै कि पाषाणादि मूर्त्तियों का पूजन करना और झांझ घण्टा बजाने परिक्रमा करनी और भी बहुत ऐसी ऐसी उपासना का बहिरंग साधनों में अन्तर्भाव है और परमेश्वरका ध्यान करना प्रेमकरना विषयों से रुक कर चित्तकूं परमेश्वर में लगाना ऐसी ऐसी उपासनाका अन्तरंग साधनोंमें अन्तर्भावहै, अन्तरंग साधन ये कहलाते हैं मन में मान नहीं रखना कि ऐसे पण्डित जातीमें ब्राह्मण धन-वाले और अपने गुणोंकी औरोंसे श्लाघा करानेकी इच्छा न रखनी इसका नाम अमानित्व है १ धर्म्मध्वज न होना जो अपने में थोड़े गुणहों तो औरों के सामने बहुत नहीं प्रकट करने ऐसा हम जानते हैं ऐसी पूजा करते हैं ऐसे ऐसे पाखण्डों का त्याग करना इसका नाम अदम्भित्व है २ मन वाणी शरीर से किसी कूं दुःख न देना इसका नाम अहिंसा है ३ बेप्रयोजन किसीने आप कूं बुरा बोला अथवा मार भी दिया समर्थ होकर उस कूं कुछ न कहना यों समझना कि प्रारब्धका भोग है इसका कुछ दोष नहीं इसका नाम क्षमा है प्रसन्न चेष्टा रखनी नम्र होकर चलना अकड़ ऐंठ कर न चलना नम्र बोलना मन्द मुसुकान पूर्वक ऐसा बोले मानो मुखसे फूल झरते हैं दूसरेका क्षोभित हृदयभी शान्त होजावे इसका नाम कोमलताहै ५ गुरुकी मन वाणी शरीर करके उपासना करनी ६ व्यवहारमें छल न करना

अन्तःकरणगत जो दोष हैं उनकूं दूर करना इसका नाम अन्तर शौच है और बहिःशौच जल मृत्तिका करके ७ सन्मार्ग में स्थित रहना जैसे जो जगत् में कहानी हैं॥ धर्म किये जो होवै हानि। तोभी न छोड़ धर्मकी बानि॥ एक इतिहासभी लिखते हैं एक ब्राह्मण बाल्यअवस्थासे ठाकुरसेवा करताथा कोई उस से पाप बुद्धिपूर्वक नहीं बनाथा एकदिन उसकूं रस्ते में चार आदमियों ने घेर लिया जो कुछ उसपैथा छीनलिया और कहा कि तुमकूं मारेंगे ब्राह्मण ने विचारा कि मैंने बाल्यअवस्थासे ठाकुर सेवा करी है कोई पाप नहीं किया ये मुझकूं वृथा मारते हैं सो मारो परन्तु जो ये कहैं तो ठाकुरजीको तो तीर्थ में पधार दूं कोई वहां पास जलाशय था उनसे आज्ञा लेकर ठाकुरजीका सिंहासन हाथ में लेकर कहा हे परमेश्वर! बाल्य अवस्था से आपकी सेवा करी थी आज उसका यो फल है कि विना पाप मारा जाता हूं वहां आकाशवाणी हुई कि तुमने पूर्व जन्म में इन चारों को एक २ बेर मारा था यो पूजाका फल है जो तुमकूं ये चारों एकबेर मारते हैं यो सुनकर चारों आदमी वहां गये बूझा कि तुम किससे बात करते थे उसने कहा तुमकूं क्या काम है जो मुझकूं मारना है तो मारदो बहुत बेर जो उन्होंने बूझा फिर सब व्यवस्था ठाकुरसेवादि की सुनादी चारों ने उसकूं छोड़दिया और जो कुछ उससे छीनाथा देदिया और कहा कि हम चारों तेरे पिछले कियेका इसलोक परलोक में बदला नहीं चाहते ८ देहका निग्रहकरना रात्रिकाजो बीच उसमें डेढ़पहर सोना उससे सिवाय आसनपर

सीधा स्नानादि क्रिया के विना बैठकर श्रवणादि क-
रते रहना ९ शब्दादि विषयों से वैराग्य करना १०
अहँकार न करना कि मैं ऐसा वैराग्यवाला हूं ११ जन्म
मृत्यु जरा व्याधि में दुःख और दोष भी हैं वारंवार
उनका अनुसंधान करते रहना क्योंकि जब तक शरीर
कूं किसी रोगने नहीं ग्रसा श्रोत्रादि इन्द्रिय भी बने
रहते हैं जरा भी न होवे तबतक ही कुछ पुरुषार्थ हो
सकता है कोई कहे कि साहब जब प्यास लगेगी तबही
कुँआ खोदलेंगे पीछे की बात किसने देखी है जैसे
प्यास समयपै त्राहि त्राहि करके मरजाता है ऐसे ही
जो बनेकाम में मोक्षका उपाय नहीं करते पीछे वही व्य-
वस्था होती है १२ पुत्र दारादिमें आसक्ति न करनी अ-
नित्य जानकर प्रीतिका त्याग करना १३ पुत्रादि के दुःख
सुख में यो अध्यासन करना कि मैं सुखी दुःखीहूं १४
इष्ट अनिष्ट की प्राप्ति में समचित्त रहना क्योंकि लाभ
हानि दिन रात्रि ऋतु युगादिवत् बदलते रहतेहैं अष्टा-
वक्रजी कहते हैं कौनसी वो अवस्था और कालहै कि
जिसमें प्राणियोंको द्वंद्व,हर्ष,शोक,हानि,लाभ,सुख,दुःखा-
दि नहींरहते जो पराये वश होनेवाले कार्य हैं उनको
जो प्रतीकार होता तो बलराम युधिष्ठिरादि दुःखकरके
क्यों दुःखी होते १५ परमेश्वर के विषय अनन्य योग
करके भक्ति करनी अर्थात् परमेश्वरके विना नहीं है भ-
जने के योग जिस भक्ति में ऐसी अव्यभिचारिणी भक्ति
करनी तात्पर्य सर्वात्मदृष्टि होना १६ एकांतदेश शुद्ध
चित्त का प्रसन्न करनेवाला हो जिसजगह सिंह सर्प

चौरादिको भीति न हो और आपकूं स्त्री आदि करके विक्षेप न होवे उस देशका सेवन करना १७ प्राकृत जो जन कि जो स्त्रीका संग और खाना सोनादि इसीकूं कहते हैं कि इस शरीरहुये का योही फलहै ऐसोंके समीप नहीं बैठना १८ वेदान्त शास्त्रके श्रवणादि विचारने में सदा लगे रहना तत्त्व पदार्थों की जो शुद्धि उसी में निष्ठा रखनी तीसरे अध्याय में भी लिखआये हैं कि ज्ञान के हेतु श्रवणादि हैं ज्ञानके होनेमें ये मुख्य साधनहैं इसी बातकूं प्रथम तो वेद भगवान् ने कहा है फिर व्यासजीनेभी सूत्रमें कहाहै कि वारंवार श्रवण करना एकही वेर न करना पंचदशीकारभी कहतेहैं कि मन्न वार्णी आदिकूं तक्क सावकाशनहीं देना मरनेसोने पर्यन्त वेदान्त शास्त्रकीचिंता करके कालकूं विचारना तात्पर्य श्रीकृष्ण श्रीशंकराचार्य भगवान् से आदि लेकर सब आचार्य इसी बातकूं सिद्ध करते हैं कि मुक्तिकी इच्छा वाले वेदान्तशास्त्र वारंवार श्रवणकरना वेदान्तशास्त्र के विना और पुराण शास्त्रोंका श्रवण न करनाइसकाभी नियम करदियाहै क्योंकि बुद्धिएकहै विचल न जावे वशिष्ठजी भी कहतेहैं कर्म वो है जो बन्धनके लिये न हो विद्या वोहै जो मुक्तिकेलिये हो निःकाम कर्मके विना और कर्मके वल आयासके लियेहै ब्रह्मविद्याके विना और न्यायशास्त्रादि चित्रकारी आदिवत् विद्याहै १६ सबसे सिवाय इसदेहका फल मुक्तिकूं समझना मुक्तिकेसाधनों में ऐसे प्रलयकरना जैसे किसी के शरीर में अग्नि लगजावे वस्त्र बाल जलनेलगें जैसे वो गंगाजीकूं दौड़ताहै जो कोई रस्ते में एक बात भी करले अथवा लोभ देकर खड़ारक्खे तो

नहीं खड़ा होता ऐसे संसारके तापोंमें तपाहुआ यो पुरुष ब्रह्मविद्या गंगाजीकूं जल्दी प्रसन्नकरके प्राप्तहो स्त्री धन वस्त्रादि जो रचेहुये मायाके झूंठे अनित्य दुःखदायी पदार्थ हैं उनमें भोगबुद्धि करके पतंगवत् नष्ट न हो २० ये बीस साधन श्रीकृष्णचन्द्रने गीताशास्त्र में कहे हैं और २६ साधन दैवीसम्पत् के कहे हैं उनकूं भी सुनो अभय होना किसी से इसलोक परलोक में भय न करना तात्पर्य पापात्माकूं भय हुआ करता है १ अन्तःकरण कूं भले प्रकार शुद्ध करना २ ब्रह्मज्ञानका जो उपाय उसमें लगे रहना ३ दानकरना यथाशक्ति कुछ अपने पास न हो तो अभय दानदेना ४ इन्द्रियों कूं अपने २ विषयों से रोकना ५ द्रव्ययज्ञ चान्द्रायणव्रतादि तपयज्ञ उपयज्ञ पढ़नापाठ करना यो यज्ञ चित्तवृत्तिनिरोध योग यज्ञ ऐसे ऐसे यज्ञसे लगाकर ज्ञानयज्ञपर्यंत जैसा अपने कूं अधिकारहो करते रहना ६ वेदशास्त्रोंका नित्य पढ़ना पाठ करना ७ अपनेधर्म का अनुष्ठान करना ८ कोमलता ९ अहिंसा १० सत्य बोलना जो प्रत्यक्षादि प्रमाण करके भले प्रकार सिद्धकर लियाहै ११ क्रोध न करना तत्काल पश्चात्काल केवल दुःख का हेतु है जिस समय क्रोध आवे वो समय किसी प्रकार बितावे पीछे बिचारे जो उससमय में ऐसा कहता करता तो क्या होता १२ त्याग करना १३ चित्तकूं शान्तकरना १४ पीछे किसीके अवगुण नहीं कहते लिखा है कि जो किया हुआ अवगुण किसीका कहे तो बराबर का पापी होता है और जो कुछ भला कर बढ़ाकर कहे तो दूना पापी होता है जो अपने सामने किसीके अवगुण कहे

प्रथम उसी कूं पापी जाने १५ दया अर्थात् किसी कूं दुःख न देना और जो बने तो दूसरे का निवृत्त करदेना १६ लोलुप न होना अर्थात् कुछ पदार्थ के लिये पामरों के सामने दीनता न करनी १७ क्रूर कठोर चित्त न होना १८ खोटे कामों में लोकलज्जा रखनी वहां यो न समझना कि मेरे निन्दा स्तुति मान अपमान बराबर हैं १९ चपल न होना अर्थात् वृथा क्रिया न करनी २० तेजस्वी रहना राजा आदिके छाया से न दबनी जैसें और आदमी हैं ऐसे वे भी हैं २१ क्षमा २२ धैर्य सत्यगुणी अर्थात् दुःख सुख भूख प्यास लाभ हान्यादि में चित्त कूं स्थिर करना २३ शौच २४ किसीसे द्रोह न करना २५ चारगुण सम्पादन करने से चित्त प्रसन्न होजाता है चित्त के प्रसन्न होने से समस्त दुःख नाश होजाते हैं जो कि आपसे जाति विद्यामें बड़े हैं उन से द्वेष न करना १ बराबर केसे मित्रता रखनी २ छोटोंपर दया करुणा करनी ३ पापी चौर जारोंकी उपेक्षा करनी ४ आत्माके विषय पूजाको अभिमान न रखना कि हम पूजाके योग्यहैं जो दैवी सम्पत् को पुरुषहै उसमें ये गुण स्वभाव करके रहतेहैं जिसमें ये गुण होंगे वो निश्चय मुक्त होवेगा और आसुरी सम्पत् अवगुण दंभ दर्प काम क्रोध लोभादि बहुत हैं गीता शास्त्र में लिखे हैं कुछ थोड़े से इस ग्रंथमें भी नवें अध्याय में लिखे हैं वे बन्धके लिये हैं जिसकूं मुक्त होनाहै वहां से निश्चय करके उनसे बर्जितरहै दैवी सम्पत् के अनुष्ठान करने से आसुरी सम्पत् का तिरस्कार होजाताहै आसुरी सम्पत्

के वर्जने से दैवी सम्पत के गणोंका अनुष्ठान होजाताहै जो लक्षण स्वभाव से ज्ञानी के रहते हैं और साधक कूं प्रयत्न करने से सिद्धहोते हैं उनकूं इस प्रश्न के उत्तर में लिखते हैं। प्रश्न। कैसे पुरुष कूं लोग ज्ञानीकहते हैं १ और कैसे वो ज्ञानी बोलताहै २ बैठताहै ३ चलता है ४। उत्तर। जिसकालमेंयो पुरुष जितनी मनमें बासनाहै सबकूं त्याग करके निजानन्दकरके तुष्टरहता है दुःखोंमें दुःखसुखमें सुखनहीं मानता दूर होगये हैं भयराग क्रोध जिसके उस कूं ज्ञानीकहते हैं १ शुभ अशुभ को प्राप्त होकर किसी जगह प्रीति नहीं करता प्रियकूं प्राप्त होकर हर्ष नहीं करता अप्रियकूं प्राप्त होकर शोक नहीं करता साची हुआ बोलता है २ मुक्तिमें यत्न करनेवाले बिचारवान् के मनकूं भी जो इन्द्रिय हरलेते हैं उन सब इन्द्रियों कूं रोककर परमेश्वर परायण हुआ बैठा रहताहै ३ सारी कामना का त्याग करके निर्मान हुआ और जो कामना फिर प्राप्तहों उनमें ममता इच्छा नहीं करता हुआ निरहङ्कार हुआ बिचरता रहता है ४ फिर भी ज्ञानी का लक्षण और प्रकार करके सुनो यो ज्ञानी का लक्षण स्वसंवेद और परवेद भी है उदासीनवत् स्थित हुआ ॥

टी०। उदासीनवत् लिखने में यो शङ्का है कि उदासीनही क्यों न कहा समाधान योहै दो मनुष्य झगड़ा करनेवालोंमें कोईतीसराभी उदासीन चलाआवे वो देखता रहै वा चलाजावे तो झगड़े करनेवालों की कुछ हानिनहीं होती परन्तु आत्मा उदासीनवत् तीन गुणोंके झगड़ेका द्रष्टाहै जो चला जावे अर्थात् उनका अभिमान छोड़ दे तो

झगड़े करनेवालेभी नहीं रहते इसलिये उदासीनवत् कहा॥
मू०। गुणों करके नहीं बिचलता हैं यो बिचारता रह-
ताहै कि गुण बर्त्तरहे हैं समान हे पाषाण सोना निन्दा
स्तुति मित्र शत्रु मान अपमान जिसके सारे आरम्भों
के त्याग करने का स्वभाव है जिसका उसकूं ज्ञानी गु-
णातीत स्थित प्रज्ञ कहते हैं और जो ज्ञानी का केवल
स्वसंवेद लक्षण है॥ सत्त्वगुणका जो कार्य प्रकाशादि
रजोगुण का जो कार्य प्रवृत्ति आदि तमोगुण का जो
कार्य मोहादि जो अपने आप प्रारब्धके बलसे प्राप्त हों
तब कुछ हर्ष शोक नहीं करता जो निवृत्त होजावे तब
कुछ हर्ष शोक नहीं करता मुक्तिकी इच्छावाले के तो
सत्त्वगुण में राग हर्ष और रज तमोगुणमें द्वेष शोक
होता है ऐसे २ साधन गीता शास्त्रादि में बहुत लिखे हैं
तात्पर्य यो है जैसे बने शरीर इन्द्रिय प्राण अन्तःकरणकूं
नित्य प्रतिदिन सिवाय २ अभ्यास करके निरोध करे
वशिष्ठजी कहते हैं जैसे बने हाथ से हाथ दांत से दांत
मलकर हाहाकारादि शब्दकरके मनकूं वशकरे विषयाकार
अन्तःकरण की वृत्ति सूक्ष्म करने से जो अपना स्वरूप
हुआ, हुआ नहीं प्रतीत होता सो स्वरूप ज्ञान द्वारा अ-
परोक्ष होजाताहै हुईवस्तु न प्रतीत होतीहो इसमें दृ-
ष्टान्त कहते हैं जैसे १० लड़कों में पढ़ता हुआ किसी का
लड़का उस लड़केका शब्द बाहर से पृथक् भलेप्रकार
नहीं प्रतीत होता अर्थात् उसकूं उसका पिता दूसरे से
यों नहीं कहसक्ता कि यो मेरा लड़का पढ़ताहै ऐसही
जिसके इन्द्रियादि अपने अपने विषयों में प्रवर्त्त होरहे

हों उसकूं ज्ञान होनो कठिन है जैसे जो वे ह लड़के प- ढ़ने से चुप होजावें अथवा शनैःशनैः पढ़ैं और वो ल- ड़का अपने स्वभाव के अनुहार पढ़ता रहै तब लड़के का शब्द निश्चय होसक्ताहै ऐसेही जो बिषयाकार अन्तः- करणकी वृत्ति सूक्ष्म होजावे तब अपनास्वरूप भलेप्र- कार प्रतीत होसक्ताहै इसलिये अवश्य अन्तःकरण की वृत्ति सूक्ष्म करदेनी योग्यहै इन्द्रियों के रोकने से अन्तः- करणकी वृत्ति सूक्ष्म होती हैं इस में भी दृष्टान्त कहते हैं जैसे किसी तालाब में दशगूल लगरही हों उसकूं जो सुखानाहो तो प्रथम गूल बन्द करे फिर सूर्य्य के तपने से तालाब सूखजाताहै ऐसे प्रथम इन्द्रियोंकूं निरोध करे फिर बिचार रूप सूर्य्य तपावे इसप्रकार अन्तःकरण की वृत्ति सूक्ष्म होसक्तीहै भला इसबातकी परीक्षाके लिये प्रथम महीना भरतो ऐसा अभ्यासकर देखो कितनाभेद पड़ता है जिसके अभ्यास करने से नित्यप्रतिदिन उसका फल करामलकवत् प्रतीत होताहो फिर उसकूं न करो तो कहो उससे सिवाय और कौन पशु है॥ अन्तःकरण की वृत्तियोंका सूक्ष्म होजाना इसीकूं मनोनाश कहते हैं ऐसे२ साधनों करके युक्त जो पुरुष सो ज्ञानद्वारा अनायास निरतिशय आनन्द कूं प्राप्त होता है॥

इति श्रीआनन्दाऽमृतवर्षिण्यांचतुर्थोऽध्यायः॥ ४॥

अथ पंचमोऽध्यायः॥

सत्त्वगुणके बढ़ाने से रजोगुण तमोगुण के कम करनेसे ज्ञानद्वारा अपने स्वरूपकी प्राप्ति होती है इसलिये सत्त्व-

गुण के बढ़ाने रज तमोगुण कम करने के लिये तीनों गुणों का लक्षण लिखते हैं जिसप्रकार ये तीनों गुण देह के विषय आत्माकूं बन्धन करते हैं सो सुनो सत्त्वगुण निर्मल होनेसे प्रकाशक शान्तरूप है कोई उपद्रव उसमें नहीं शान्तरूप होने से जो अपना कार्य सुख उसके साथ बंधन करताहै और प्रकाशक होने से प्रकाशक का कार्य जो ज्ञान उसके साथ आत्माकूं बन्धन करताहै मैं सुखी मैं ज्ञानी ये मनके धर्म हैं आत्मा में जोड़ देता है रजोगुणका कार्य और बन्धन प्रकार लिखते हैं रजोगुण रागात्मक अर्थात् रागहै आत्मा स्वरूप जिसका और तृष्णा संग की उत्पत्ति है जिससे सो रजोगुण आत्माकूं कर्मों से संग औ० ॥

टी० । जो वस्तु प्राप्त नहीं उसमें अभिलाषारहनी तृष्णा प्राप्त वस्तु में विशेष आसक्ति होनी संग ॥

मू० । शक्ति करके बन्धन करता रहै तमोगुण तमरूप है सब प्राणियोंकूं मोह करनेवाला है सो तमोगुण प्रमाद निद्रा आलस्य आदि करके बन्धन करता है सत्त्व आदि अपने अपने आविर्भाव में जो करते हैं उन की शक्तिकूं दिखलाते हैं जिस समय रज तमोगुणकूं तिरोभाव करके सत्त्वगुण आविर्भाव होता है सो सत्त्व दुःख शोकादि के कारण हुये सन्ते भी सुख के अभिमुख करदेता है रजोगुण सुखादिके कारण हुये सन्ते भी कामों में लगादेता है तमोगुण शास्त्रजन्य ज्ञान कूं ढक करके सुखादि के कारण हुये सन्ते भी प्रमादादिमें जोड़े देता है महत्व पुरुष पूर्व संस्कार से मिले भी उन्होंने

उपदेशो भी क्रिया उपदेश समय चित्त प्रमादमें लगा रहा जिसहेतु से वोही तमोगुण है महात्मा ने जो कहा उस अर्थकूं न धारण किया जिस हेतुसे वोही प्रमाद है यो नियम है कि जब सत्त्वका आविर्भाव होताहै तब रज तम तिरोभाव होजातेहैं जब रजोगुणका आविर्भाव होताहै तब सत्त्व तम तिरोभाव होजाते हैं जब तमोगुण का आविर्भाव होता है तब सत्त्व रज तिरोभाव होजाते हैं जिस कालमें सत्त्वादि देह में बढ़े रहते हैं उन का स्वरूप लिखते हैं इस शरीर के सारे द्वारों में जिस समय प्रकाश होताहै और अन्तःकरण में सुखका आविर्भाव होताहै इस चिह्नसे जानना कि अब सत्त्वगुण बढ़ाहुआहै ऐसेही लोभ प्रवृत्ति कर्मोंका आरम्भ अशमस्पृहा ऐसे ऐसे चिह्न करके जाने कि अब रजोगुण बढ़ रहा है और प्रकाश अप्रवृत्ति प्रमाद मोहादि के आविर्भाव में यो जाने कि अब तमोगुण बढ़रहाहै अन्तकाल में जो सत्त्वगुणादि का आविर्भाव हो तो क्या २ फल होताहै सोई लिखतेहैं जो अन्तकाल में सत्त्वगुण बढ़ाहोवे तो यो देहधारी जीव इस देहकूं त्याग करके जो कि पुण्यलोक है जहां मल नहीं है सुख भोगने के स्थान हैं उनकूं प्राप्त होताहै और रजोगुणमें मर-करके कर्मसंगी मनुष्यों में उत्पन्न होताहै तमोगुण में मरकरके पशु आदि मूढ़योनि में उत्पन्न होताहै जिस हेतु से इस शरीरमें अपने आप सत्त्वादिगुण आविर्भाव होते हैं उसका कारण कहते हैं निर्मल फल जो ज्ञान सुख सो पिछले सत्त्वगुणी कर्म का फल है रजोगुणी

कर्म्म का फल दुःखादि है तमोगुणी कर्म्म का फल अ-
ज्ञानादि है सत्त्वगुण से ज्ञानादि होते हैं रजोगुण से
लोभादि होते हैं प्रमाद मोहादि तमोगुण से होते हैं
सत्त्वगुणी आदि पुरुषों कूं देह के पीछे क्या फल होता
है प्रथम तो यो कहाथा अन्तकाल में जो गुण बढ़ा होवे
उसका ऐसा फल होता है यहां तारतम्यता का वि-
चार है जे सत्त्वगुणी हैं वे अपने गुणकी तारतम्यता से
ऊपर के लोकों कूं प्राप्त होंगे जैसे इसलोक में ब्राह्मण
क्षत्रिय वैश्य शूद्रादि की और राजा मन्त्री आदि की ता-
रतम्यताहै ऐसेही ऊपर भी देवता गन्धर्व्वादि ब्रह्मलोकों
की तारतम्यता है जितनी यहां मनुष्यलोकमें जिसके
सत्त्वगुणकी वृत्ति सिवाय रही है वो उसी लेखेसे ऊपरके
लोकोंकूं प्राप्तहोगा इसीप्रकार जो गुणी मनुष्यलोक में
ब्राह्मण और चक्रवर्त्ति राजासे लगाकर चांडाल कंगाल
पर्य्यन्त उत्पन्न होवेगा और तमोगुणी पशुआदि योनियों
में अर्थात् कीट आदि सर्पादिसे लेकर गो हंसादि पर्य्यन्त
योनियों में उत्पन्न होवेगा और जो ज्ञानी है वो गुणातीत
हैं मुक्त होवेगा वो यो जानताहै कि मैं इन गुणोंसे पृथक्
हूं गुणही कर्त्ता है मैं अकर्त्ता हूं गुणोंका द्रष्टा साक्षी हूं
परमेश्वर कहते हैं गुणातीत मेरे भावकूं प्राप्त होवेगा
तात्पर्य्य मुक्त होवेगा॥ देवता की पूजा करने और यज्ञ
आदि दान तपादि करने से अन्नके खानेसे ऐसी ऐसी
बहुत बातें हैं सत्त्वादिकी परीक्षा होती है तात्पर्य्य जो
सत्त्वगुणी देवताकी पूजाकरै तो जानना कि यो सत्त्वगुणी
है ऐसेही रज तमोगुणी की कल्पना करलेनी और ऐ-

सेही यज्ञ दानादि में समझलेना सत्त्वगुण पूजा दानादि करनेसे सत्त्वगुण बढ़ता है इसलिये रजोगुणी तमोगुणी सम्बन्धी पूजादि त्यागदेनेके लिये सत्त्वगुणी सम्बन्धी पूजादि सेवन करने के लिये पूजादि कूं सत्त्व रज तमोगुण भेद करके लिखते हैं ॥ ब्रह्मा, विष्णु, महेश, सूर्य्य, शक्ति, गणेशादि के यजन करनेवाले सत्त्वगुणी हैं यक्षादि के यजन करनेवाले रजोगुणी हैं भूत प्रेतादि के यजन करनेवाले तमोगुणी हैं रजोगुणी तमोगुणी ऐसा ऐसा तप करते हैं कि शास्त्र में तो उसका विधान नहीं और प्राणियों कूं भय का देनेवाला घोर शरीर कूं खेद करने वाला मूर्ख वृथा पाखण्ड करके ऐसा तपकरते हैं हेतु उसका यों है कि काम राग दम्भ अहङ्कारादि करके युक्त हैं जैसे कि नास्तिकादि के व्रतादि हैं इससमय में बहुत प्रसिद्ध हैं लक्षण उनके श्रीतुलसीदासजी ने रामायण में लिखे हैं तात्पर्य्य जो शास्त्र ने नहीं विधान किया सो पाखण्ड है शास्त्र की विधि से करनी तप आदि सत्त्वगुणी है भोजन का भेद कहतेहैं रसवाला अन्न घृत शर्करा करके युक्त और भोजनके पीछे शरीर में अपने रस करके चिरकाल स्थिर रहे और स्निग्ध कोमलतर और जिसके देखने से चित्त प्रसन्न होजावे देखतेही मन अंगीकार करलेवे ऐसा अन्न अवस्था उत्साह शक्ति आरोग्यका बढ़ानेवाला सत्त्वगुणी कूं प्रियहै यज्ञ में ऐसा अन्नदेना योग्य है १ अति कटुअम्ल लवण उष्ण तीक्ष्ण रुक्ष और दाह करनेवाला ऐसा अन्न दुःख शोक रोगका बढ़ानेवाला है और भोजन के पीछे भी दुर्म्मन

करनेवाला रजोगुणी कूं प्रिय है अतिशब्द सब के साथ जोड़ देना २ जिसकूं बनेहुये पहर बीतजावें और गत रस ठंढाहोजावे और जिसमें दुर्गन्ध आवे बासी जूंठा शास्त्र करके निन्दित ऐसा अन्न तमोगुणी है ३ यज्ञका भेद कहते हैं फलकी इच्छा नहीं है जिन्हों के योंहीं विचार करके कि यज्ञ करना वेदविहित है हमकूं करना योग्य है इसप्रकार मनकूं समाधान करके जो यज्ञकरते हैं सो यज्ञ सत्त्वगुणी है १ फलका उद्देश करके दंभ करके जो यज्ञ करते हैं सो रजोगुणी है २ शास्त्र विधि करके हीन रजोगुणी तमोगुणी अन्नहै जिस यज्ञमें मंत्र दक्षिणा करके हीन श्रद्धाकरके रहित जो यज्ञ सो तमोगुणी है ३ तपकूं आगे सत्त्वादि भेद करके लिखेंगे प्रथम तपकूं मन बाणी शरीर भेद करके लिखते हैं देवता ब्राह्मण गुरू और कोई महात्मा उनका पूजनकरना कोमलरहना हिंसा न करनी पवित्र ब्रह्मचर्य्य रहना इसकूं शारीरकतप कहते हैं १ मैथुनके आठ अंगहैं सबसे बर्जित रहना इसका नाम ब्रह्मचर्य्य है रागबुद्धिकरके स्त्रीका स्मरण करना १ कीर्त्तन करना २ हांसी च्वोहल करना ३ भलेप्रकार दृष्टि जमाकर देखना ४ गुप्त एकान्तमें बातकरनी ५ मनमें संकल्पकरनी कि यो कैसे प्राप्तहो ६ यो निश्चय करना कि हम इससे संगकरेंगे ७ साक्षात् भ्रष्ट होजाना ८ रागपद सब के साथ जोड़देना ऐसा वचन बोलना दूसरेकूं उद्वेग न करते सत्यहो उस कूं प्यारालगे परिणाममें सुखका करनेवाला थोड़े अक्षरोंमें कहना वेदशास्त्र के पढ़ने पाठका अभ्यास रखना इस

कूं वाणी का तप कहते हैं २ मनकी प्रसन्नता अक्रूरता मनन करना मनकूं विषयों से निरोध करना व्यवहार में मायो न करनी इसकूं मानसतप कहतेहैं ३ इस तीन प्रकार के तपकूं सात्विकादि भेदकरके तीन प्रकार का कहते हैं एकाग्र चित्त करके फलकी इच्छा न करके परम श्रद्धा करके ऐसा जो तीन प्रकार का तप किया है इसकूं सात्विक कहते हैं १ जिन्होंने सत्कारके लिये किये साधुहैं मान और पूजाके लिये दम्भकरके जो तप किया है सो अनित्य होने से रजोगुणी है २ बिना विवेक के दुराग्रह करके आत्माकूं पीड़ा करके अथवा दूसरे के नाश के लिये जो तप करते हैं सो तमोगुणीहै ३ दानका भेद कहते हैं हमकूं देना योग्य है इस बुद्धि करके सुन्दर देशकालमें अनुपकारी सुपात्रों कूं जो दान देना सो सत्त्वगुणी १ जो प्रत्युपकारी कूं वा फलका उद्देश करके वा चित्तमें क्लेश करके जो दान देना सो रजोगुणी २ अपात्रोंकूं वा अदेशकालमें देना और जो सुपात्रों कूं भी देना तो असत्कार अवज्ञा करके देना यो दान तमोगुणी है ३ कर्मका भेद कहते हैं फलकी इच्छा न करके यो विचार कर कि कर्म करना वेदशास्त्र की आज्ञा है नित्य करना चाहिये राग द्वेष के विना अभिनिवेशन रखकर जो कर्म कियाहै सो सत्त्वगुणी१ फल की इच्छा करके अहंकार करके बहुत आयास करके जो कर्मकिया सो रजोगुणी २ पश्चात् भावी धनादि का व्यय हिंसा अपना बल इनकूं नहीं विचार करके केवल मोह से जो कर्मका आरम्भ करना सो कर्म

तमोगुणी ३ कर्त्ताका भेद कहते हैं त्यागदिया है अभि-
निवेशकर्म में जिसने और गर्वकी जो बात बोलनी उस
से रहित धैर्य उत्साहवाला कर्म की सिद्धि असिद्धि में
निर्विकार ऐसा कर्मकर्त्ता सत्त्वगुणी १ रागी फलकी
इच्छावाला लोभी हिंसात्मक अपवित्र हर्ष शोक करके
युक्त ऐसा कर्मकर्त्ता रजोगुणी २ आकुल अनम्र अवगुण
की शक्तिकूं छिपानेवाला आलस्यस्वभाववालाशोकशील
दीर्घसूत्री अर्थात् घड़ीके काम कूं महीना लगावे ऐसा
कर्मकर्त्ता तमोगुणी ३ सुखका भेद कहते हैं तम रजो-
गुणी वृत्तियों का निरोध कर कर जो सत्त्वगुण बढ़ताहै
कार्य उसका शांति संतोष निर्वैरता बेपाह कोमलतादि
है उसकाल में जो अंतःकरण से सुख होता है सो सत्त्व-
गुणी है प्रथम अन्तःकरण निरोधके समय तो यो विष
की सदृश प्रतीत होता है परन्तु थोड़े दिनों तक पीछे
तो सदा अमृत की सदृश है १ इन्द्रियों का विषयों के
साथ सम्बन्ध होने से अर्थात् खाने देखने मैथुनादिसे
जो सुख होता है सो रजोगुणी उस क्षण में तो अमृत
की सदृश प्रतीत होता है पीछे तो विषकी सदृश है २
निद्रा आलस्य मनोराज्यादि से जो सुख होता है सो
तमोगुणी वह इस लोकका न परलोकका केवल आत्मा
कूं मोहनेवाला है तात्पर्य इसलोक स्वर्गादि में व देव-
ताओं में ऐसा कोईनहीं एक शुद्ध प्रत्यगात्माके विना
कि जो इन गुणों से रहितहो त्याग ज्ञान बुद्धि धैर्य श्र-
द्धादि सत्त्वादि भेद से गीता शास्त्रमें भले प्रकार लिखे
हैं और जितना भेद ऊपर लिखा है उनका भी अर्थ

गीतादि के श्रवण से निश्चय होसक्ता है जितनी वेद शास्त्रों की आज्ञा है कि यो करना यो न करना सबका तात्पर्य यो है कि जिसके करने से रज तमोगुण बढ़ते हैं वह काम न करना और जिसके करनेसे सत्त्वगुण बढ़ता है वह काम करना बुद्धिमान् को विचारना चाहिये कि प्रातःकालादि स्नान ध्यानादि करने से रज तमोगुणका नाश होता है वा नहीं जो जाने कि होता है तो सदा जैसे बने वैसेही शास्त्रविहित कर्मों को करना योग्य है जिस कालमें रज तमोगुणकी वृत्तियों का तिरस्कार और सत्त्वगुणकी वृत्तियों का आविर्भाव भलेप्रकार होजावेगा उसकालमें यो मेरेकूं करना योग्यहै यो अयोग्य है यो रस्ता बन्ध दुःखादि का है यो रस्ता सुख मुक्ति का है सब जान जावेगा और वशिष्ठ व्यासादि कूं जो यो समर्थ है सब भूत भविष्यत्काल की व्यवस्था कह देते यो सत्त्वगुणका प्रताप है जिसके जितना सिवाय सत्त्वगुणहोगा उसके उतनाही सिवाय प्रकाश होगा तात्पर्य सत्त्वगुण के बढ़ाने से सिद्धस्वर्ग लक्ष्मी आदि भी प्राप्त होनी बहुत सहजहै और सत्त्वगुणके बढ़ने से ज्ञान द्वारा मुक्तहोजाता है यो मुख्यफलहै॥

इति श्रीआनन्दामृतवर्षिण्यांपञ्चमोऽध्यायः ५॥

अथ षष्ठोऽध्यायः॥

प्रथम साधन अवस्था में कर्म उपासना करनी योग्यहै ज्ञान में समुच्चय न करना अर्थात् कर्म उपासना ज्ञान तीनों मिलकर मुक्ति होतीहै ऐसा न विचारना श्रीशंकरा-

चार्य महाराजने गीता भाष्यादि ग्रन्थों में सब समुच्चय का खण्डन भलेप्रकार प्रमाणपूर्वक कियाहै तात्पर्य इस बात कूं सिद्ध कियाहै केवल ज्ञानसे मुक्ति होती है ज्ञानकूं कर्म उपासनाकी इच्छा नहीं कर्मउपासनाकूं ज्ञानकी इच्छाहै तात्पर्य विना ज्ञान कर्म उपासना से मुक्ति नहीं होती यहांभी इसी बातकूं सिद्ध करते हैं केवलज्ञानसे मुक्ति होती है। शंका। तप योग यज्ञ स्नान व्रतादि का फल मुक्ति सुनाजाताहै उनकी क्या गति होगी। उत्तर। तप योगादि परम्पराकरके मुक्तिके साधनहैं ज्ञान तो साक्षात् स्वतंत्र मुक्तिका साधन है योही बात श्रीरामचन्द्रजी ने भी लक्ष्मणजी के प्रति रामगीता में कही है वे जो कर्म उपासना वाले केवल कर्म उपासना से मुक्ति कहतेहैं उनसे बूझना योग्य है कि वेदकी हजारों श्रुति द्वैत पर हैं उसकी क्या गति है कर्म उपाससावाले जो बूझे कर्म उपासना पर जो हजारों श्रुतिहैं उनकी क्या गति है इसप्रश्नके उत्तरमें ब्रह्मवादी तो यों कहते हैं किकर्म करने से अन्तःकरण शुद्ध होता है उपासना से चित्त की एकाग्रता होती है यों उनका परम प्रयोजन है फिर ज्ञानद्वारा मुक्ति होती है तदुक्तम्॥ धर्मसे विरति योग से ज्ञाना। ज्ञानसे मोक्षपद वेद बखाना॥ यों शास्त्रार्थ दिग्विजय शारीरक भाष्यादि ग्रन्थों में बहुत है जो बहुत चर्चाकरे वह उन ग्रन्थोंका श्रवणकरे यहां सिद्धांत लिखतेहैं केवल ज्ञान मुक्तिका साधना है उसमें यों दृष्टांत है जैसे पाकक्रिया में लकड़ी जल बर्तनादि परम्परा करके गौण साधन है ऐसेही कर्म उपासना मुक्ति को गौण साधन है ज्ञान तो साक्षात मुक्ति का साधन है जो ऐसी

शंकाकरे पाकक्रिया में अग्नि गौण रहो जल बर्तनादि मुख्य हैं दृष्टांतमें यों आया कर्म मुख्य है ज्ञान गौण है उत्तर उसका यों है अविद्या और कर्म्म का विरोध नहीं कर्म भी जड़ अविद्या भी जड़ है अन्धकारकूं अन्धकार नहीं दूर करसक्ता विद्या ज्ञानरूप है योंही ज्ञान अज्ञान कूं दूर करसक्ता है जैसे प्रकाश अन्धकार कूं इस हेतु से ज्ञान गौण नहीं होसक्ता तदुक्तम् ॥ हुये ज्ञान बरु मिटै न मोहू। तुम रामहिं प्रतिकूल न होहू। शंका। कर्म गौण रहो ज्ञान मुख्य रहो उपासना कहां गई। उत्तर। जो ऐसी उपासना है कि मैं ब्रह्म हूं अर्थात् अभेद उपासनाका तो ज्ञान में अंतर्भावहै और दासोहम् अर्थात् भेद उपासना का कर्म में अन्तर्भाव है इस प्रक्रियामें ज्ञान कर्म दोही हैं। शंका। आत्मा तो सब शरीरों में परिच्छिन्न प्रतीत होता है आत्मा कूं पूर्णता कैसे है। उत्तर। परिच्छिन्नवत् आत्मा अज्ञानसे प्रतीत होताहै अविद्या के नाश होने से आत्मा पूर्ण जैसाहै वैसाही प्रतीत होने लगता है जैसे सूर्य के आगे बादल होनेसे वा मंदिर आदि की उपाधि से धूप परिच्छिन्न प्रतीत होतीहै बादल मकानकी उपाधि दूर होने से पूर्ण प्रकाश होजाता है जो आत्मा जीव अज्ञान का जो कार्य देहादि में अहंबुद्धि इस करके आपकूं कर्त्ता भोक्ता मानकर मैला होरहा है ज्ञान के अभ्यास से निर्मल होजाता है। शंका। जो ज्ञान बनारहा तो अद्वैत की असिद्धि है। उत्त । ज्ञान के अभ्यासले प्रकट होता है जो वृत्ति ज्ञान सो अज्ञानकूं नाश करके और आत्माकूं निर्मल करके आप भी नाश होजाती है जैसेकतकरेणु

जल के मलकूं दूरकरके आप भी नाश होजातीहैं । शङ्का । आत्मा ज्ञानरूपहै वहां अज्ञान कैसे रहा । उत्तर । ज्ञानस्वरूप आत्मा अज्ञान का विरोधि नहीं वृत्तिज्ञान अज्ञानका विरोधि है जैसे बांस में अग्नि रहती है परंतु उसकी विरोधि नहीं मथन करनेसे उत्पन्न होती है जो अग्नि सो विरोधि है । शङ्का । यो संसार प्रत्यक्ष दीखता है इसकूं झूठा कैसे कहते हो । उत्तर । संसार स्वप्न की तुल्यहै जैसे स्वप्न अपने कालमें सत्यवत् प्रतीत होता है जाग्रत् में असत्यवत् प्रतीत होता है सत्य असत्य वत् प्रतीतहोता है परमार्थ में दोनों प्रकार नहीं और जैसे देखने मैथुनादि से जाग्रत्में दुःख सुख होता है वैसा-ही स्वप्न में दुःख सुख होता है और जैसे स्वप्नके पदार्थ अनित्य हैं वैसेही जाग्रत् के पदार्थ अनित्य हैं तात्पर्य भ्रान्तिकाल में जबतक जगत् सच्चासा प्रतीत होता है कि जबतक अपना स्वरूप सच्चिदानन्द ब्रह्मसे अभिन्न सब का अधिष्ठान नहीं जाना जैसे रजत की जबतक भ्रम से प्रतीत है तबतक शुक्ति के विशेष गुण नील पृष्ठ त्रिकोणादि नहीं निश्चय किये सत्चित् रूप आत्मा में सब प्रपञ्च कल्पित हैं जैसे सोने में झूमके बाली आदि कल्पित हैं और जैसे घटमकानादि की उपाधि से महाकाश पृथक् २ घटाकाश मठाकाश बनावच्छिन्न वृक्षावच्छिन्न आकाश कहाजाताहै ऐसेही आत्मदेहों की उपाधि से परिच्छिन्न कहाजाता है और जैसे जब घट मकानादि का नाश होजावे तो केवल महाकाश रह-जाता है ऐसे देहसमूह अविद्या के नाशहुये आत्माभी

पूर्ण रहजाता है सत्त्व तम रजोगुणोंकी नानाउपाधिसे जाति वर्ण आश्रमादि आत्मामें कल्प रक्खे ह जैसे जल स्वभावसे मीठा श्वेतहै उपाधि से खट्टे नमके लाल पीले की उसमें कल्पना की जातीहैं स्थूल सूक्ष्म कारण तीनों उपाधियों से आत्मा पृथक् जानना चाहिये जैसे शुद्ध स्फटिक रक्त पीतरंग के योग से वैसाही प्रतीत होता है जैसे धानों को मूसले से खोट पिछोड़कर चावल पृथक् करलेतेहैं ऐसे पंचकोशरूपी भूसीकूं दूरकरके विचाररूप जो पिछोड़ना इस युक्त करिके आत्माको पंचकोश तीन शरीर से पृथक् शुद्ध जानना चाहिये । शङ्का । तुम आत्मा कूं सर्व्वगत कहते हो सारे तो नहीं दीखता । उत्तर । आत्मा सब कालमें सर्वगत है परंतु शुद्ध बुद्धि की वृत्तिमें प्रतीत होताहै जैसे प्रतिबिम्ब सारे हैं परंतु स्वच्छपदार्थ दर्पण जलादिमें प्रतीत होताहै देह इन्द्रिय मन बुद्धि प्रकृत इनसे आत्मा विलक्षणहै ये सब दृश्यहैं उनका जो द्रष्टा साक्षी सो आत्माहै । शङ्का । तुम आत्मा कूं निर्विकार कहते हो आत्मा तो विकारवाला प्रतीतहोता है क्योंकि मैं चलता हूं वो बोलताहूं ऐसे २ व्यापारसे व्यापारी दीखता है । उत्तर । पृथक् २ जो इन्द्रिय मन प्राणादि ये पृथक् २ अपने २ विषयों में अपनी २ क्रिया में जो प्रवर्त्त होते हैं उनके साथ आत्माभी व्यापारीवत् विना विवेक मूर्खों को प्रतीत होता है जैसे बादल के चलतेहुये बालक कहता है कि चन्द्र चलता है बालक के तो योंही निश्चय है परंतु विचारवानकूं भी भ्रान्तिसे चन्द्र का चलना प्रतीत होताहै और जैसे नाव में बैठेहुये गङ्गा

के तीरकेवृक्षादि चलतेहुये प्रतीत होते हैं ऐसे आत्माभी
व्यापारीवत् प्रतीत होता है देह इन्द्रिय प्राणमनादिसब
जड़पदार्थ हैं आत्मा चैतन्यकूं आश्रय करके अपने अपने
अर्थ में प्रवर्त्त होते हैं जैसे सूर्यके निकलने से मनुष्यादि
अपने २ काममें लगते हैं देह इन्द्रिय गुण कर्मादि असत्
सत्चित् आत्मामें विवेकके विना अभ्यास कर रक्खे हैं जैसे
आकाशमें नीलता मनादिकी उपाधि अर्थात् मैंकर्त्ताभोक्ता
हूं ये अज्ञानसे आत्मामें कल्प रक्खे हैं जैसे जलका चलना
चन्द्रमें कल्प रक्खाहै राग इच्छा सुखदुःखादिबुद्धिकेहुये
२प्रतीत होते हैं सुषुप्ति में बुद्धि लय होजाती है वहां नहीं
प्रतीत होते इसलिये रागादि बुद्धि के धर्म हैं आत्मा के
नहीं जैसे सूर्यका स्वभाव प्रकाश अग्निका उष्ण स्वभाव
जलका शीत स्वभाव है ऐसे नित्य निर्मल आत्मा का
सच्चिदानन्द स्वभाव है सत्चित् आनंद ये तीन पद हैं
शास्त्रमें ये तीनों मिलकर एक सच्चिदानन्द ऐसा बोलने
में आता है सत् जो तीनोंकाल भूत भविष्यत् वर्तमानमें
एकरस बना रहताहै भाषामें सत्तकूं है कहते हैं और घट
पटादिमें जो है यों शब्द प्रतीत होता है सो आत्माही
का अंश है यों बात दूसरे अध्यायमें जहां अस्ति भाति
प्रियका प्रसंग है वहां भलेप्रकार सिद्ध कर आये हैं और
चित् चैतन्य रूप ज्ञानरूप प्रकाशरूप परंतु ऐसा प्रकाश
न समझना जैसा अग्नि सूर्यादि का है क्योंकि ये तो
स्वप्न सुषुप्ति में एकभी नहीं ऐसे समझो जिसके प्रकाश
से जाग्रत् स्वप्न सुषुप्ति के पदार्थों का भान होताहै अ-
र्थात् जिस प्रकाश करके रूपादि मनादि सुख अज्ञानादि

जाने जाते हैं जाग्रत् अवस्था में भी आत्मा के प्रकाश के बिना कुछ नहीं प्रतीत होसक्ता परन्तु सूर्यादि का भी प्रकाश है और स्वप्न सुषुप्ति में तो केवल आत्माही का प्रकाश है इसहेतु से वहां भले प्रकार प्रतीत होताहै कि आत्माका यों प्रकाश है आत्मा स्वयं प्रकाश स्वप्न में भलेप्रकार प्रतीत होसक्ता है और आनन्दरूप जो कि सबसे सिवाय प्यारी वस्तु है उपनिषद् में याज्ञवल्क्य मैत्रेयी का संवाद है हे मैत्रेयी! धन आत्माके लिये प्यारा पुत्र आत्माके लिये स्त्री आत्मा के लिये तात्पर्य सब पदार्थ आत्माके लिये प्यारे हैं जो सब पर बिपत्ति पड़े तो प्रथम अपने शरीर की रक्षा करता है और ब्रह्मानन्द के लिये शरीर इन्द्रिय प्राणका भी नाश कर देताहै इसी हेतु से प्यारा आत्मा है वोही आत्मा आनन्दरूपहै वह आनन्दरूप रज तमोगुण की वृत्तियों में दब रहा है इस आनन्दरूप का पंचदशी ग्रंथ में ब्रह्मानन्द के ५ अध्यायहैं योगानंद, आत्मानन्द, अद्वैतानन्द, विद्यानन्द, विषयानन्द ये हैं नाम जिनके उनमें भले प्रकार निश्चय होसक्ताहै। शंका। आत्मा तो निर्विकार है बुद्धि जड़ है मैं जानताहूं यो किसका धर्म। उत्तर। आत्मा का सत् चित् अंश और बुद्धिकी वृत्तिये दोनों जुड़कर विवेकके विना यों व्यवहार होता है कि मैं जानता हूं आत्मा कूं जीव जानकर भय कूं प्राप्त होताहै और जब यों जाने कि मैं जीव नहीं परमात्माहूं तब निर्भय होजाता है जैसे जबतक रज्जु में सर्प जानता रहेगा तबतक निश्चय भय रहेगा वेद बारम्बार कहतेहैं जो जीव ब्रह्ममें किंचित् भी भेद करेगा

इसको बड़ा भय होगा विचारो जो जीव ब्रह्म में भेद है तो पूर्णब्रह्म कैसे है जो एकसे भेद हुआ तो अनेकजीव पशु पक्षी देवता यज्ञ आकाशादि से सबसे भेद हुआ तो जैसे और है ऐसेही ब्रह्मभी एकदेशी हुये और रामचन्द्र, कृष्णचन्द्र, विष्णु, शिवादि मूर्त्ति तो परमेश्वर की माया मयहैं वास्तव नहीं इस बातकूं परमेश्वरने अपने मुखसे कहाहै हे लक्ष्मी! यो मेरा शरीर मायामय है सात्विक नहीं पद्मपुराण में गीताजी के माहात्म्यमें लक्ष्मीनारायण का संवादहै और गीता शास्त्र में परमेश्वर कहतेहैं मुझ अव्यक्तकूं जो व्यक्तिवाला जानते हैं वे मूर्ख हैं जब कि परमेश्वर आप ऐसा कहते हैं कि विवाद की बात है प- रन्तु मूर्ख अपनी मूर्खतासे सच्चिदानन्द एकरस पूर्णब्रह्म कूं परिच्छिन्न एकदेशी कहेंगे अर्थात् वैकुण्ठ, कैलास, मथुरा, अयोध्या वासी कहेंगे और परमेश्वरके सद्भावमें ऐसी ऐसी चर्चा करेंगे कि कृष्णचन्द्रने गोवर्द्धन उठा लि- या इस हेतुसे कृष्णचन्द्र परमेश्वर हैं और जो श्रुति स्मृति युक्ति हजारों परमेश्वर के सद्भाव में प्रमाण हैं कि जिन युक्तियोंसे नास्तिकोंके मतखण्डन कियेजातेहैं जो नास्तिक वेदकूं न परमेश्वर कूं न परमेश्वरके वाक्यों कूं मानता है उसका मत केवल युक्तिकरके खण्डन होताहै मूर्ख उन यु- क्तियों कूं तो जानते नहीं ऐसी तुच्छ युक्ति देतेहैं जिसकूं बालक भी खंडनकरदे गोवर्द्धनके सिवाय कैलास रावणने उठा लियाहै और हजारों राजा पुराणोंमें प्रसिद्धहैं जिनके रथके पहिये के समुद्र बनेहुये हैं, क्या वे परमेश्वर थे और परमेश्वर ने रावण मारा कंस मारा और अनेक

जय करी यो परमेश्वर की क्या स्तुति है अर्थात् निन्दा है क्योंकि जो परमेश्वर करने कूं न करने कूं और का और करदेने कूं समर्थ हैं क्या वे ऐसी ऐसी उपाधि करके नानाप्रकार का अपने ऊपर दुःख उठाकर औरों से सहाय लेले जय करते तदुक्तम्। दोहा। प्रीति विरोध समान सन करिय नीति अस आहि। जो मृगपति बध मेडुकन भलो कहै को ताहि॥ चौपाई। भुवन अनेक रोमप्रति जासू। यह प्रभुता कछु बहुत न तासू॥ सो महिमा समुझत प्रभु केरी। जो बरणत हीनता घनेरी॥ और प्रसिद्ध है कि चक्रवर्ती राजाकूं एक देशका राजा कहना षट्शास्त्री कूं दो चार पोथी का पढ़ाहुआ कहना चारपुत्रवाले कूं एकपुत्रवाला कहना कितना अनर्थ है और जो यों कहो कि व्यासदेव बाल्मीकि जी आदि ने क्यों परमेश्वर की ऐसी ऐसी स्तुति लिखी हैं सो सुनो जो परमेश्वरकूं सच्चिदानन्द पूर्णब्रह्म नित्यमुक्त एकरस असंग ऐसा विचारनेकूं समर्थ नहीं योंहीं जानता है जैसे मैं उत्पन्न हुआ हूं मेरे माता पिता स्त्रियादि हैं ऐसे ही परमेश्वर माता पिता स्त्रीवाले होंगे और जैसे इसलोक में शरीर मकान उपवनादि सुन्दर सुन्दर जिस के होते हैं और जो शत्रुओं कूं मार मार आप जय कूं प्राप्त होता है उसकूं मूर्खलोग बड़ा कहते हैं इसलिये उन मूर्खों के लिये व्यासादिजीने परमेश्वरकी ऐसी ऐसी स्तुति लिखदी और विचारवानों के लिये वेदान्तमें जो स्वरूप परमात्मा का निश्चय किया है उसकी स्तुति लिखी है विचार देखो यो कुछ विरोध की बात नहीं जब मूर्ख भेदवादी

वेदान्त की ऐसी ऐसी युक्तियों में दबजाते हैं उत्तर नहीं देसक्के तब यो बकने लगते हैं अजी ज्ञान बड़ा कठिन है कलियुगमें ज्ञान नहीं होता और जो ब्रह्मवादी ज्ञानी विशेष करके संन्यासी हैं उन कूं कहते हैं कि कलियुग में संन्यास वर्जित है उन से बूझना चाहिये श्रीमत्पर-महंस परिव्राजकाचार्य श्रीशङ्कराचार्य महाराज शिवजी का अवतार पद्मपादपरमेश्वराचार्य्य हस्तामलक आ-नंदगिरिजीसे आदि लेकर बहुत ग्रन्थों में प्रसिद्ध हैं और बहुत से इससमय में प्रत्यक्ष हैं और श्रीशंकरा-चार्य महाराजकूं भी कोई दोहज़ार वर्ष बीते हैं जब कलि-युग था वा नहीं और जो कलियुग में शुचि ज्ञान नहीं होता तो व्यासजीने पुराणों में इतिहासों में भलेप्रकार सूत्रोंमें और श्रीकृष्णचंद्र महाराज ने गीताशास्त्र में ज्ञान क्यों कहा और प्रथम अध्याय में गीता भाष्यादि ग्रंथों का नाम हम लिख आयेहैं वे ग्रन्थ उन्होंने क्यों बनाये और जो यो शंकाकरे कि हरिका नामही ३ मेरा जीवन है और अन्यथा कलियुग में नहीं है ३ गति और जो केवल बोधके लिये प्रयत्न करते हैं वे केवल तुष कूटते हैं ऐसे २ वाक्यों की क्यागति है। उत्तर। ऐसे २ वाक्य कि कलियुगमें ज्ञान नहीं होता ये वाक्य जो किसी जगह नाम माहात्म्य की प्रशंसा वा भक्तिकी प्रशंसा वा कर्मादिकी प्रशंसा में व्यासादिने जो कहे हैं क्योंकि व्यासादि कवियों का यो नियम है जिस देवता वा भक्ति आदिकी प्रशंसा करते हैं वहां योंही कहतेहैं कि जो है योंही है तो वो कहना उनका मूर्खों के लियेहै

और जो यो न माने तो ऊपर जो हमने प्रश्न कियाहै कि उन्होंने ज्ञान क्यों कहा उसका उत्तरदो तात्पर्य प्रथमही हम तीसरे अध्याय में लिख आये हैं कि मूर्ख वेदशास्त्र के एक २ देशकूं सुनकर या अपने मतका हठ करके वृथा वाद करते हैं बुद्धिमान् को वेदशास्त्रों का सिद्धांत निश्चय करना यो सिद्धान्तहै कोई महात्मा यो कहतेहैं कि हम आधे श्लोकमें वो बात कहेंगे जो कोटि ग्रन्थों ने कही है सोई आधे श्लोक में कहते हैं ब्रह्म सत्य जगत् मिथ्या है जो यो सच्चिदानन्द लक्षणवाला जीव है सोई ब्रह्म है अपर कोई ब्रह्म नहीं योही ज्ञान मुक्ति का हेतु है॥

इति श्रीआनन्दाऽमृतवर्षिण्यांषष्ठोऽध्यायः॥ ६ ॥

अथ सप्तमोऽध्यायः॥

श्रीशंकराचार्य्य महाराज ने हस्तामलकाचार्य्य से प्रश्न किया कि तुम कौनहो इसका उत्तर श्री हस्तामलकाचार्य कहते हैं मैं मनुष्य, देव, यक्ष, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, ब्रह्मचारी, गृहस्थी, वानप्रस्थ, संन्यासी इन में कोई नहीं निज बोध स्वरूपहूं फिर उन्हों ने दृष्टान्त देकर कृपाकरके जो औरोंकूं भी बोधहोजावे इसी अर्थकूं सिद्ध किया हमभी उसी अर्थकूं संक्षेप करके इसअध्याय में लिखेंगे और भी दृष्टान्तयुक्ति लिखेंगे जैसे मनुष्यादि का व्यवहारमें प्रवर्त्त होना इसमें निमित्त सूर्यनारायण हैं ऐसे देह मन प्राण बुद्धि आदिकी प्रवृत्ति चेष्टामें जो निमित्त है और परमार्थरूपकरके तो कोई उपाधि द्रष्टा

इत्यादि जिसमें नहीं केवल आकाशवत् पूर्णएकरसहै सो नित्य प्राप्त स्वरूप आत्मा है स्थूल सूक्ष्म कारण शरीर पंचकोशों से पृथक् अवस्था का साक्षी सच्चिदानन्द रूप जो है सो आत्माहै। शंका। जैसे और पदार्थ आकाश पृथिवी आदि इन्द्रिय मन बुद्धि आदिकरके निश्चय किये जाते हैं ऐसे आत्मा तो नहीं जानाजाता। उत्तर। इन्द्रिय मन बुद्धि आदिकूं आत्माप्रकाशताहै जैसे दीप घटादिकूं बुद्धि आदि जड़ पदार्थों करके आत्माका वैसे निश्चय होसक्ताहै आत्मा तो स्वयंप्रकाश है आत्मा कूं अपने जाननेमें इन्द्रिय मन बुद्धि आदिकी इच्छा नहीं जैसे दीपक के जानने में और दीपकी इच्छा नहीं चिदाभास के अर्थ जानने के लिये प्रथम दृष्टान्त लिखते हैं महाकाश १ घटाकाश २ घटमें जल ३ जलाकाश ४ ये चार दृष्टान्त हैं अब दृष्टान्तमें समझो शुद्ध चैतन्य १ कूटस्थ २ अंतःकरण ३ जीव ४ इसीका नाम चिदाभासहै अर्थात् चैतन्यवत् प्रतीत हो परन्तु चैतन्यके लक्षण करके रहित हो जीवका जो अधिष्ठान अर्थात् जीव जिसमें कल्पित है और कूटवत् निर्विकार ठहरा रहे सो कूटस्थ जीवका लक्षण यों है अधिष्ठान जो चैतन्य और सूक्ष्म शरीर और चैतन्यकी जो छाया सूक्ष्म शरीर में इन सब का संग जीव कहाजाता है और महाकाश १ घटाकाश २ अभ्राकाश ३ जलाकाश ४ ये चार दृष्टान्त हैं अब दार्ष्टान्त में समझो शुद्धचैतन्य १ कूटस्थ २ ईश्वर ३ जीव ४ और वोही चैतन्य ऐसे ६ प्रकार का है शुद्धचैतन्य १ साक्षी २ प्रमातृ ३ प्रमाण ४ प्रमेय ५

फल ६ उपाधि रहित शुद्धचैतन्य १ अविद्योपहित साक्षी २ अंतःकरण विशिष्ट प्रमाता ३ अन्तःकरण वृत्त्यवच्छिन्न प्रमाण ४ घटावच्छिन्न चैतन्य प्रमेय ५ अन्तःकरण वृत्त्यभिव्यक्त चैतन्य सो फल चैतन्य दृष्टान्त इसमें तालाब गूलकेदार कहेहैं यों विषय भाषामें भलेप्रकार नहीं लिखाजाता जो विस्तार करके लिखें भी तो इसका समझना कठिनहै और जो समझ सक्ता है वो भाषा क्यों पढ़े सुन्दर शास्त्र पढ़े सुने प्रत्यक्ष प्रमाण में और परमात्मा बुद्धि आदि का किस प्रकार ते विषय है और किसप्रकार विषय नहीं इसबातके जानने में इस विषय का जानना अवश्य चाहता है इसलिये यों विषय वेदान्तशास्त्रार्थ के जाननेवालों से श्रवण करना योग्य है जो इस ग्रंथ कूं पढ़ावें सुनावेंगे वे अवश्य इस विषय कूं भी जानते होंगे हमने जो प्रसंग चिदाभास के अर्थ जानने के लिये लिख दिया है जैसे मुख का आभासक मुखका जाननेवाला जो दर्पणमें दीखता है वो मुखसे कुछ पृथक् वस्तु नहीं ऐसे बुद्धि में जो चिदाभास है वो चैतन्य से पृथक् कुछ वस्तु नहीं उसका जो अधिष्ठान कूटस्थ रूप सो नित्य प्राप्त आत्मा है जैसे दर्पण के अभाव में आभास की हानि हुये सन्ते एक मुख प्रतीत होता है वहां कुछ भी कल्पना आभास्य आभासक द्रष्टा दृश्य बिम्ब प्रतिबिम्बकी नहीं होती ऐसे ज्ञानके नाशहुये सन्ते कार्य उसका बुद्धि है बुद्धि का नाश हुये सन्ते जो निराभासक त्रिपुटी रहित वस्तु है सो आत्माहै ध्याता,ध्यान,ध्येय,प्रमाता,प्रमाण,

प्रमेय, ज्ञाता, ज्ञान, ज्ञेय इसकूं त्रिपुटी कहते हैं मन इंद्रिय आदि से पृथक् मन इंद्रिय आदि का आदि मन इंद्रिय आदि करके जो अगम्य सो आत्मा है सब जीवों की बुद्धि में जो एक चैतन्य अपनेआप शुद्धरूप ऐसे भान होता है कि जैसे अनेक जलके घटोंमें एक सूर्य प्रतिबिम्ब करके भान होताहै सो आत्मा॥ जैसे एक सूर्य अनेक नेत्रों कूं क्रम करके नहीं प्रकाशता ऐसे आत्मा ज्ञानस्वरूप अनेक कूं क्रम करके नहीं बोध करता। शङ्का। जो एक चैतन्य सब शरीरोंमें है तो यज्ञदत्तादिके दुःख सुख देवदत्त क्यों नहीं अनुभव करता। उत्तर। अविद्या की उपाधिसे जिस शरीर में जिस जगह विशेष अध्यास है वहीं के दुःखादि अनुभव होसक्ते हैं और जगह के नहीं होसक्ते जैसे जिसकूं योही निश्चय है कि इस शरीर में चैतन्य और है यज्ञदत्तादि के शरीरों में और चैतन्य है तो उसकूं भी एक काल में शरीर फूटने का दुःख और पलँग पर सोने का सुख और भी अनेक दुःख सुख अनुभव नहीं होसक्ते जिस काल में जहां अन्तःकरण की वृत्ति होगी उसी जगहका दुःखसुख प्रतीत होगा और जगहका नहीं होगा जो दूसरे शरीरमें अध्यास होगा तो संदेह यज्ञदत्तादिके दुःख सुख प्रतीत होंगे जैसे मित्र पुत्रादि में अध्यास होता है तो उनके दुःखसुख में जो कहता है कि मैं दुःखी सुखी हूं और यो बिचारना चाहिये कि जो प्रथमशरीरमें चैतन्य था वोही इसशरीरमें है फिर पूर्वजन्म के दुःख सुख क्यों नहीं प्रतीत होते तात्पर्य जब एक शरीर में यो व्यवस्था है जो अन्तःकरण की वृत्ति नेत्र

के साथ लगीहुई है तो रूपही का ज्ञान होताहै समीप बैठे कुछ कहाकरो किञ्चित् नहीं सुनता इसी प्रकार सब जगह कल्पना करलेनी हजार वस्तु घरमें खाने पहरने देखने की रक्खी हों जिस जगह अन्तःकरण की वृत्ति है वोही दुःख सुखकी हेतु है जब कि एक शरीरके दुःख सुख एकसमय होनेवाले उनका एक काल में अनुभव नहीं होसक्ता फिर अनेक शरीरों का कैसे दुःख सुख अनुभव होसके। शङ्का। अष्टावधानी तो उत्तर देना चौसर खेलनी आदि ऐसे ऐसे ८ काम एकसमय किया करता है और दूसरे जो एक बालिस्त चौड़ा लम्बा खजला है उसकूं दांतों से कुतर २ जो खाता है तो शब्द स्पर्श रूप रस गन्ध उसकूं एक काल में प्रतीत होता है और तीसरे कोई कहता है कि मैं चन्द्र तारों कूं एक कालमें देखता हूं इसका उत्तर दो। उत्तर। मूर्ख यो बात कहता है कि मैं एक काल में सबकूं अनुभव करता हूं उसकूं मनकी गति की खबर नहीं मन ऐसा चंचल है एक क्षण नहीं लगने पाता–प्रथम पदार्थ कूं अनुभव करके दूसरे पदार्थ में प्रवृत्त हो जाताहै इस बातकूं सूक्ष्मदर्शी जानते हैं और सुनो यो प्रसिद्ध है कि वाणी आदि इंद्रिय बिना अंतःकरण विशिष्ट चैतन्य के युक्तहुये किसी क्रियामें प्रवर्त्तन नहीं होसक्ते देखिये पुरुष पाठ जपभी करता है और अनेक मनोराज्य भी करताहै विचारना चाहिये उसके मुखसे श्लोक मंत्रजो उच्चारण होता है तो चैतन्य विशिष्ट मनका वाणी के साथ संयोगहै वा नहीं जो कहो कि संयोग है तो मनोराज्य कौन करता है और जो कहो संयोग

नहीं तो वाणी जड़ है उसमें क्रिया कैसे होती है तात्पर्य व संदेह प्रतीत होताहै मनकी गति बहुत चंचल है मन मनोराज्यभी कियेजाता है और वाणीके साथ मिलकर उस विषयकूं भी अनुभव किये जाता है मूर्ख योंहीं जानता है कि मेरामन पाठ जपमें नहींलगा जिनकूं अपने मनकी भी खबरनहीं उनसे ऐसी ऐसी शंका रहती हैं इस उत्तर में तीनों प्रश्नका उत्तर है ॥

श्रीशंकराचार्य भगवान् कहते हैं कि यो जो जगत् दीखताहै यो क्याहै क्या इसका रूपहै योकैसे हुआहै इसका क्या हेतु है यों बुद्धिमान् को कभी नहीं चिन्तवन करना फिर क्या चिन्तवन करना चाहिये यों माया भ्रांति इन्द्रजाल है यों चिन्तवन करना चाहिये जैसे किसी के पैर में कांटा लगजावे तो वो यों न विचारे मेरे यो कांटा कौनसे मुहूर्त्त में लगा है कौन से पेड़का है यहां कैसे आया ऐसा ऐसा चिन्तवन न करै जैसे बने उसके निकालने का उपाय करे ऐसेही संसार की निवृत्तिका उपाय करेजैसे एक सूर्यका प्रतिबिम्ब अनेक जलके घटों में है जो घटकूं लेकर चले तो सूर्य न तो उसके साथ जाता है न कँपता है ऐसे आत्मा ज्ञान स्वरूप शरीर इन्द्रियादि की क्रिया में है वो क्रियावाला नहीं जैसे ढक गई है बादल से दृष्टि जिसकी वो यों मानता है कि सूर्य छिपगये ऐसे अविद्या की उपाधि से यो पुरुष आपकूं वृथा बँधाहुआ मानता है और जैसे किसी बन्दर ने घट में हाथ डालकर दोनों हाथमें अन्न भरकर मुट्ठी बन्द करली पीछे वृथा अज्ञान से ची ची

किलकिल करे है बिचारो उसकूं किसने बन्धन कियाहै और सुनो कोई तोते के पकड़नेके लिये मैदान में तो चुगा डालदेता है और दोबांस खड़े करके बीचमें उसके नलकी जैसी पंखे में होती लगादेता है नीचे उस नलकी के किसी पात्र में जलभरदेता है तोता चुगे के लालच आता है प्रथम नलकीपर आनकर बैठता है उस नलकी का नियम है उसके ऊपर जानवर बैठा और वो फिरी और जानवर उलटा हुआ जो वो जानवर छोड़कर भागजावे तो कुशल है नहीं तो यों हाल होता है कि जब तोता उस नलकी पर आनकर बैठा और वो फिरी तोते ने जाना यो मेरा आश्रय था जो इसकूं छोड़ दिया तो जाने कहां गिरूंगा उसकूं वो पकड़े रहा फिर उस तोतेकी नीचेकूं पीठ ऊपर कूं पैर होगये उस तोते ने जो जलकी तरफ कूं देखा तो अपना प्रतिबिम्ब जल में प्रतीत हुआ उस तोतेका अध्यासन प्रतिबिम्ब में लगगया फिर वो तोता यो जानता है कि मैं डूब रहाहूं जल में ऊपर का सब हाल भूलगया वृथा अज्ञान से चीची टीटी करे है बिचारो उसकूं किसने बंधन कियाहै ऐसे यो कूटस्थ चैतन्यरूप अपने प्रतिबिम्ब चिदाभास से अध्यास करके बंधनवत् होरहाहै वास्तव बंध नहीं सब जगह जैसे आकाश अनस्यूत है ऐसे आत्मा बाहर भीतर स्वच्छरूप अनस्यूत है किसी वस्तु कूं स्पर्श नहीं करता और जैसे श्वेतमणि रंगकी संनिधि होने से लाल पीली प्रतीत होती है ऐसे आत्मा अविद्याकी उपाधि से कर्त्ता भोक्ता प्रतीत होता है समस्त स्थूल सूक्ष्म उपा-

धिकूं नेति नेति इस वाक्य से निषेध करके जैसे दूसरे अध्याय में जीव ब्रह्मकी एकता महावाक्य करके करी है सदा वोही चिंतवन करना चाहिये प्रथम तत्त्वम् पदोंका अर्थ लिख भी आये हैं फिर भी और प्रकार करके सुनो कोई मुक्तिकी इच्छावाला तीनताप जो संसारमें हैं उन करके तपाहुआ और ॥

टी० । ज्वर क्रोधादि करके जो ताप सो आध्यात्मिक १ शत्रु चोर व्याघ्रादि करके जो ताप सो आधिभौतिक २ शीतोष्ण पवनादि करके जो ताप सो आधिदैव ३ ॥

मू० । संसार से उद्विग्न हुआहै मन जिसका शमदमादि साधनों करके युक्त सद्गुरुसे बूझता है हे भगवन्! जिससाधनकरके अनायासपूर्वक संसाररूप बंधनसे मैं छूटजाऊंसो महाराज मुझकूं संक्षेपकरके केवल कृपाकरके कहो। उत्तर। हे साधो! तुमने बहुत अच्छा बूझा सावधान मति होकर सुनो तत्त्वमसि महावाक्यादि से उत्पन्न हुआ जो जीव ब्रह्मका तादात्म्य विषय ज्ञान सो मुक्तिका कारण है। प्रश्न। महाराज कौन जीव कौन ब्रह्महै किसप्रकार करके उनकी तादात्म्यता है और महावाक्य किसप्रकार करके उसको प्रतिपादन करते हैं। उत्तर। जीव कौन है तूहीं जीवहै और जो बूझता है कि मैं कौन हूं तहीं बेसन्देह ब्रह्म है। प्रश्न। हे भगवन्! अब तक तो मैंने भलेप्रकार पदार्थ भी नहीं जाना मैं ब्रह्महूं यो जो महावाक्यार्थ इस कूं कैसे प्राप्त हूं। उत्तर। सत्य कहते हो वाक्यार्थ के ज्ञान में प्रथम पदार्थ का ज्ञान हेतु है इसलिये प्रथम तत्त्वम् पद का अर्थ सुनो अन्तःकरण और उसकी वृत्ति-

यों का जो साक्षी चैतन्य घन नित्य एकरस और देहादि में जो अहंबुद्धि इसकूं त्याग करके आत्मारूप करके जो चिन्तवन करने में आता है सो आत्मा त्वम् पदका अर्थ यो शरीर रूपादिवाला होनेसे आत्मा नहीं जैसे पञ्च महाभूतों के विकार घटादि हैं ऐसेही प्रत्यक्ष विकारवाला होने से देह भी है। प्रश्न। जो देह अनात्मा है तो हे भगवन्! आत्माकूं करामलकवत् साक्षात् प्रतिपादन करो। उत्तर। जैसे घटका देखनेवाला घटसे पृथक् होता ऐसे देहका देखनेवाला देह कैसे होगा और जैसे मकान में बैठाहुआ कोई यो कहे मैं मकान हूं तो विचारो कैसी मूर्खताकी बात है ऐसे यो चैतन्य रूप असंग निरवयव है और कहै कि मैं देहहूं अर्थात् पुरुष स्त्री ब्राह्मणादि हूं विचारो इससे परे और क्या अज्ञान होगा देह तो उपलक्षण है प्राण इन्द्रिय मन बुद्धि आदि दृश्य होनेसे सब अनात्मा है सबका जो द्रष्टा सो आत्मा है देहसे परे इन्द्रिय इन्द्रियों से परे मन मनसे परे बुद्धि बुद्धि से परे जो बुद्धि का साक्षी सो आत्मा आत्मासे किंचित् नहीं और सब संघात भी आत्मा नहीं होसक्ता क्योंकि द्रष्टा दृश्य विलक्षण होते हैं देह इन्द्रिय की जो चेष्टा क्रिया में सदा उपचय अपचय वाली हैं कभी किसी प्रकार का शरीर कभी किसी प्रकार की इन्द्रिय मनादि की चेष्टा देखने में आतीहै कभी किसी प्रकार की जिसकीसंनिधिमात्र से ये सब चेष्टा करते हैं एकरस जो इनका द्रष्टा सो आत्माहै जड़ पदार्थ देहादि जिसकी संनिधि से चैतन्यवत् प्रतीत होते हैं जैसे चुम्बक की संनिधि से लोहा सो आत्मा है

मेरा मन इस समय कहीं गया अब मैंने स्थिर किया इस वृत्ति कूं जो जानता है सो आत्मा है जाग्रत् स्वप्न सुषुप्ति का होना न होना इसकूं निर्विकार हुआ जो जानताहै सो आत्मा है जैसे घटका आभासक दीप घटसे पृथक्है ऐसे देहादि का आभासकदेही पृथक्है देह स्त्रीपुत्र मकानादि के नष्ट होते २ जो आपकूं परम प्रेमका आस्पद प्रतीत होता है सोई आत्मा है जैसे सूर्य पाप पुण्य का साक्षी असंग सविकार है इसी प्रकार साक्षी चैतन्य रूप निराकार आत्मा है और ये ६ विकार देहके हैं जायते अस्ति वर्द्धते विपरिणमते अपक्षीयते विनश्यति देहइन्द्रिय प्राण मन बुद्धि अज्ञान का लक्षी त्वम् पदका वाच्यार्थहै अब तत्पद का अर्थ लिखते हैं परिपूर्ण एकरस नित्यानन्द ज्ञानस्वरूप परमात्मा सर्वज्ञ परमेश्वर संपूर्ण शक्तिवाला जिसकूं वेद ऐसा प्रतिपादन करते हैं सो परमात्मा ब्रह्म है जो प्रपंचका कारण अन्तर्यामी कर्मोंके फलका देनेवाला जगत् की सृष्टि स्थिति लय जिसके सकाश से होते हैं सोई तत्पदका वाच्यार्थ है और एक शुद्ध चैतन्य तत्त्वम् पदों का लक्ष्यार्थ है तत्त्वम् पदों की एकता दूसरे अध्याय में जैसे लिख आयेहैं वोप्रकार यहां चिंतवनकरलेना तात्पर्य जो तत्पद का लक्ष्यार्थ है सोई त्वम् पद का लक्ष्यार्थ है सो तू है ऐसा कहो वा तू सो है ऐसा कहो इस प्रकार गुरुने शिष्यकूंबोधनकिया और कहाकि मैं ब्रह्महूं येोवाक्यार्थ जबतक भलेप्रकार दृढ़ न हो तबतक शम दमादि साधनोंकरके युक्तहुआ श्रवण मनन निदिध्यासनका अभ्यास नित्य प्रतिदिन करता रहे श्रवण ऐसे

करे सुना जाता है जिससमय कोई ऐसा रागगाता है मृगके मुखमें जो तृण होताहै सो बाहरका बाहर और भीतर का भीतर रहजाताहै दृष्टान्तमें आप समझ लेना दश उपनिषद् बृहदारण्यादि भाष्य सहित शारीरक भाष्य गीताभाष्य ये तीन प्रस्थान वेदान्तके कहलाते हैं उनकूंही ब्रह्मविद्या कहते हैं आदित्यपुराण पंचदशी आदि ग्रन्थोंका उन्हीं में अन्तर्भाव है ऐसे ऐसे ग्रन्थोंका ब्रह्मनिष्ठों से श्रवण करना जब तक संशय विपर्यय भलेप्रकार न जावे तबतक वारंवार आदिसे अन्ततक इन ग्रंथों का श्रवणकरना इसीका नाम श्रवण है मनन ऐसे करना जैसे पटवा रेशम कूं सुलझाता है ऐसेही जो श्रवण किया उसकूं एकान्तमें बैठकर चिन्तवनकरे पूर्वपक्ष साधन फलादि कूं पृथक् करे युक्तिसे सिद्धान्त वस्तु को पुष्टकरे इसीका नाम मननहै निदिध्यासन ऐसे करना जैसे कोई बाज़ार में बैठाहुआ अपना काम कररहा था राजा की सवारी आगे कूं चली गई कुछ न मालूम हुआ ऐसे जो मनन करके सिद्धान्त वस्तु का निश्चय किया है कि मैं देह प्राण इन्द्रिय मन बुद्धि अज्ञान का साक्षी कूटस्थहूं इस का सदा चिन्तवन करना इस कूं तो सजातीय प्रवाह कहते हैं और जैसे प्रथम देह में अध्यासनथा कि मैं ब्राह्मणादिहूं इस का सदा चिन्तवन न करना इसकूं विजातीय तिरस्कार कहते हैं इसप्रकार सजातीय प्रवाह और विजातीय तिरस्कार सदा करते रहना इसी कूं निदिध्यासन कहते हैं श्रवण से अज्ञान का नाश होताहै मनन करने से संशय का नाशहोता है

निदिध्यासन करने से विपर्यय का नाश होता है फिर महावाक्यार्थ का ज्ञान भले प्रकारदृढ़ होजाता है सोई मुक्तिको हेतु है ॥

इति श्रीआनन्दामृतवर्षिण्यांसप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

अथाष्टमोऽध्यायः ॥

नित्य यह विचार करता रहै कि यो शरीर इन्द्रियादि अविद्या कार्य्य है बुद्बुदवत् नाशवान् है मैं तो इनसे विलक्षण एकरस हूं मैं देह नहीं इसहेतु से मेरे जन्मादि नहीं मैं इन्द्रिय नहीं इस हेतु से शब्दादि विषयों करके मेरा संग नहीं मैं मन नहीं इस हेतु से दुःख सुखादि मेरे धर्म नहीं मैं प्राण नहीं इस हेतु से भूख प्यास मेरे धर्म नहीं मैं निर्गुण तो निष्क्रिय नित्य निर्विकल्प निरंजन निराकार निर्विकार नित्यमुक्त निर्म्मल आकाशवत् सारे व्यापक बाहर भीतर बेसंग अचल नित्य शुद्ध नित्य बुद्ध अखण्डआनन्द अद्वय अक्षर अजर अमर हूं श्रीशंकराचार्य भगवान् कहते हैं इसप्रकार जो अभ्यास निरन्तर करता रहे कि मैं इसप्रकार ब्रह्म हूं तो यो अभ्यास अविद्या कार्य के सहित हरलेताहै जैसे रोगकूं औषध अभ्यास करने के साधन लिखते हैं ये साधन गीताशास्त्रमें लिखे हैं शुद्धबुद्ध करके युक्तसत्त्वगुणी धैर्यसे उसी बुद्धिकूं निश्चयकरके शब्दादि विषयों कूं त्याग करके रागद्वेषकूं दूर करके विविक्त देश में बैठकर सदा इसप्रकार भोजनका अभ्यास करना योगशास्त्रमें लिखाहै दो भाग तो अन्न करके पूर्णकरे और एक जल

करके और एक भाग पवनके प्रचार के लिये खालीरक्खे देह वाणी मनकूं निग्रहकरे अर्थात् अपनी इच्छापूर्वक अपने अपने विषयमें प्रवर्त्त न हों ध्यान योग जो निदिध्यासन इसीकूं मुख्य समझकर नित्य प्रतिदिन इस ध्यान योग का अभ्यास करते रहना वैराग्य कूं आश्रय रखना अहंकार न करना कि मैं ऐसा विरक्तहूं काम क्रोध दुराग्रहकूं त्याग करके प्रारब्धके बलसे जो प्राप्त होजावे उसी में सन्तोष करना जो पदार्थ पराई इच्छा से आजावे उसमें ममता छोड़कर सदानिदिध्यासन करना योगके बलसे खोटे मार्ग में प्रवृत्त न होना अर्थात् किसी कूं शाप देना किसीपर अनुग्रह करना यो न करना परमेश्वर कहते हैं इस प्रकार अभ्यास करनेवाला जो मेरा वास्तव तत्त्वस्वरूप है उसकूं प्राप्त होजता है समस्त दृश्यकूं आत्मा में लयकरके जैसे प्रथम अपवाद लिख आये हैं एक आत्माकूं निर्मल आकाशवत् भावना करता रहै रूपवर्णादि कूं त्याग करके परमार्थका जाननेवाला परिपूर्ण चिदानन्द रूप करके स्थितरहै इस प्रकार अभ्यास करते करते वृत्तिज्ञान उदय होकर अन्तःकरणके सहित समस्त अज्ञान कूं भस्म करदेता है जैसे मथन करते करते बांस में अग्निउत्पन्न होकर समस्त वनकूं भस्म करदेती है जैसे सूर्य के निकलने से प्रथम चांदना होजाता है ऐसे प्रथम मूलाज्ञान का नाश होता है फिर थोड़े दिनों के पीछे सब कार्य उसके स्थूल देहसे लगाकर अविद्यापर्यंत नष्ट होजाते हैं आत्मा तो सदा प्राप्त है अविद्या करके अप्राप्तवत प्रतीत होता है जैसे अपने गले की माल भूल जावे फिर

किसी के बतलाने से प्रासवत् प्रतीत होती है जैसे स्थाणु में पुरुष शुक्ति में रजत रज्जुमें सर्प की भ्रांति ऐसे २ बहुत दृष्टांत हैं इसी प्रकार ब्रह्मके विषयजीवता है जैसे दिक् का भ्रम सूर्य्य के उदय होने से दूर होता है ऐसे यो वर्ण आश्रमादि की भ्रान्ति अविद्या के नष्ट होने से आत्मा के आविर्भाव होने से दूर होती है जैसे कारण से कार्य भिन्न नहीं ऐसे जगत् ब्रह्म से भिन्न नहीं कोई कीट भ्रमरका ध्यान करते करते भ्रमर होजाता है ऐसे जो जीव सच्चिदानन्द रूप ब्रह्म सच्चिदानन्दब्रह्म का ध्यान करते करते ब्रह्म होजावे तो इसमें क्या कहना है जैसे किसी घट में १० छिद्र हों भीतर उसके दीप होवे उसी दीप की प्रभा दश तरफ कूं निकल कर परिच्छिन्न प्रतीत होती है ऐसे आत्मा दीपवत् शरीरघटवत् इन्द्रिय छिद्रवत् हैं जैसे उसदीपकूं छिद्रद्वारा पवन लग लग प्रभा उसकी मंद रहती है ऐसे इंद्रिय द्वारा विषय वासनारूपी पवन लग लग आत्माका सच्चिदानन्दरूप मन्दसा प्रतीतहोता है इन्द्रिया के रोकने से आत्मा सच्चिदानन्द साक्षात् प्रतीत होताहै यावत् प्रारब्ध कर्म शेषहै तावत् बिद्वान् उपाधिमें स्थित हुआ प्रतीत होता है परन्तु आकाशवत् लिपायमान नहीं होता ज्ञानवान् पण्डित भी हैं परन्तु मूर्खवत् जानकर रहता है किसी जगह वायुवत् आसक्त नहीं होता जब अविद्याका नाश होजाता है तब नि-र्विशेष ब्रह्म में लयहोजाता है इसलाभ से परे कोई और लाभ ब्रह्मलोकादि का नहीं इससुख से परे और कोई सुख चक्रवर्त्ति राजाइन्द्र ब्रह्मादिका नहीं इसज्ञान

से परे कोई और ज्ञान भूत भविष्यत् आदिका नहीं इस प्रत्ययकं रूप आत्माकूं देखकर मूर्तिमान् परमेश्वर के देखने की इच्छा नहीं रहती यो रूप होकर फिर मनुष्य देवतादि रूप नहीं होता यो जो आनन्द रूप है इस आनन्दके एक लेशसें ब्रह्माजी से लेकर चींटी पर्यन्त आनन्दी हैं जिसकी आभा करके सूर्य चन्द्रादि भासते हैं सूर्य चन्द्रादि की आभा करके जो नहीं प्रतीत होता सोई प्रत्यगात्मा ब्रह्महै यो रूप ज्ञानचक्षु करके दीखता है कर्मचक्षु करके नहीं दीखता जैसे अंधेकं सूर्य उआ हुआ नहीं प्रतीत होता तात्पर्य यो रूप अधिकारीकूं प्रतीत होताहै जैसे स्त्री संग का आनन्द तरुण अवस्था में आठ दश वर्षकी अवस्था में लड़का लड़की जो उस आनन्द कूं अनुभव किया चाहे तो क्या होसक्ताहै जिनके मैले अन्तःकरण हैं उनकूं इसरूपका साक्षात् नहीं होसक्ता अन्तःकरण मैले होने से देवता गुरु वेदांतशास्त्र में श्रद्धा का अभाव होताहै श्रद्धाके बिना गुरु कृपा नहीं करते गुरु की कृपाके बिना कभी किसी कालमें ज्ञानहुआहै न होगा श्रीशंकराचार्य भगवान् कहतेहैं कि हजारों श्रुति अद्वैत ब्रह्मकूं प्रतिपालन करती हैं और यो आत्मा सच्चि-दानन्दरूप भलेप्रकार निरन्तर प्रकाशवालीभी है परंतु बिना गुरुकी कृपा मैले अन्तःकरणवाले साक्षात् करनेकूं समर्थ नहीं इसलिये चाहिये प्रथम अन्तःकरणकी शुद्धि का उपाय करे क्योंकि श्रीभगवान् ने भी प्रथम अर्जुन कूं ज्ञान उपदेश किया फिर कहा हे अर्जुन! हमने तुमकूं ज्ञान उपदेश किया जो तुमकूं यो ज्ञान अपरोक्ष न हु-

आहों तो अंतःकरणकी शुद्धिकेलिये निष्काम कर्म्मयोग सुनो जैसे सोना मैला होताहै उसकूं अग्नि में तायकर शुद्ध करलेते हैं ऐसे अंतःकरणकूं निष्काम कर्म योग करके शुद्धकरना चाहिये कि ज्ञानकी इच्छावालेकूं प्रथम निष्काम कर्म मुख्य है शुद्धान्तःकरणवालेकूं समाधि साधनमुख्यहै। प्रश्न। शुद्धांतःकरणवाले की क्या प- रीक्षाहै। उत्तर। जबजाने यहांके जो देखे सुने स्त्री आदि पदार्थ हैं स्वर्गादि के अमृतादि पदार्थ जो सुने हैं सब कूं चित्त न चाहै दुःखदायी जाने मुक्ति की इच्छाहो तब निश्चयकरे कि अंतःकरण शुद्धहोगया फिर विवेक वैराग्यादि साधनों करके युक्तहोकर यों बिचार करे कि मैं कौन हूं और यह जगत् कैसे हुआ है व इसका कर्ता और कौन है उपादान क्याहै इसी का नाम वि- चारहै यो देह पंचभूतों का विकार मैं नहीं इन्द्रिय मन बुद्धि आदि मैं नहीं उनसे कोई विलक्षण हूं और जो किसीने प्रथम न्यायशास्त्र पूर्व मीमांसा वा पुराणादि पढ़े सुनेहों वेदांतशास्त्र न सुनाहो इस हेतुसे उसके बहुत संशय विपर्ययहो तो शारीरकभाष्य पढ़े सुने वहां भ- लेप्रकार युक्तिपूर्वक निश्चयहोसक्ता है भारत भागव- तादि में तो जिस जगह जो ज्ञानका प्रसंग है तब तो योहीं प्रतीत होताहै कि ज्ञान मुख्य है और जिसजगह कर्म उपासनादि का संग है वहां कर्म्म आदि मुख्य प्रतीत होते हैं वैष्णवादि अपने अपने मतकूं मुख्य बतातेहैं औरों की असूया करते हैं भागवतादि में स्पष्ट यो नहीं प्रतीतहोता कि समस्त वेद भारत पुराणादिका

कहां समन्वयहै अर्थात् मुख्य प्रयोजन किसमें है शारीरकभाष्यमें भलेप्रकार श्रुति स्मृति युक्तिदृष्टांत देदेकर और अनेक दोष भेदवादि आदिमियों के मतों में दिखाकर और जिसलिये कर्म उपासनादिका वेदों में प्रसंगहै उतने अंशकूं अंगीकार करके यो सिद्ध किया है कि समस्त वेदशास्त्र पुराणादि का ब्रह्म में समन्वय है सब श्रुति स्मृति प्रवृत्ति निवृत्ति मार्गकी कोई साक्षात् कोई परम्परा करके ब्रह्म कूं बोधन करती हैं और जो यो विरुद्ध प्रतीत होताहै कि कोई श्रुति कहतीहै ब्रह्म मनका विषय नहीं कोई कहती है ब्रह्म सूक्ष्म मन बुद्धि करके जानाजाता है कहीं ऐसा सुनाजाताहै जब वैराग्य होवे उसी समय संन्यास करे कहीं ऐसा सुना जाताहै माता पिता स्त्री आदि के त्याग में दोष है ऐसे २ विरुद्धवाक्य अनेकहैं विचारनेसे विरुद्धवास्तव नहीं क्योंकि जैसा अधिकारीदेखो वैसाही उपदेश किया तात्पर्य्य सबका अविरुद्ध भलेप्रकार शारीरक भाष्यमें निश्चय होसक्ता है और मुक्तिके साधन ऐसे २ सुने जाते हैं कि अन्तमुक्तिका साधनहै और तीर्थ श्रीगङ्गाजीसे लेकर यावत् हैं उनमें स्नान करना बद्रीनारायणजी से आदि लेकर दर्शन पाषाणादिमूर्त्तियों का पूजन करना पाठ जप करना चतुर्भुजी आदि मूर्त्तियों का ध्यान करना सगुण निर्गुण ब्रह्म की उपासना से लगाकर वेदान्तशास्त्रका श्रवण मनन निदिध्यासन तक योहीं सुना जाता है ये सब मुक्तिके साधन हैं अर्थात् एक एकादशी के व्रत करने से मुक्त होजाता है विष्णुचरणोदक पान करने से श्रीगङ्गाजीमें स्नान करनेसे मुक्त होजाताहै

तात्पर्य सबके माहात्म्यमें योहीं प्रतीत होता है कि ये सब मुक्ति के साधनहैं अब यो विचारना चाहिये मुख्य साधन कौनहै जिससे निश्चय मुक्तिहोजावे और जो किसी के यो विश्वास है कि एकादशी आदि व्रत करने से बद्रीनारायणादिके दर्शन करनेसे श्रीगंगाजी में स्नान करने से निश्चय मुक्त होजाता है फिर तृप्ति क्यों नहीं होती तात्पर्य मुख्य साधन मुक्तिका वेदान्त शास्त्र का श्रवण मनन निदिध्यासन है और सब परम्परा करके गौण है इस बातकूं भी प्रमाणपूर्वक शारीरकभाष्यमें सिद्ध किया है और जो कि पूर्व मीमांसावाले स्वर्गादिकी प्राप्ति कूं मुक्ति कहते हैं और कोई एक देशी उनके कहते हैं कि नित्य सुखका प्रकट रहना मुक्ति है सांख्यशास्त्र वाले कहते हैं देह बुद्धि आदि में अहङ्कारकी निवृत्ति हुये सन्ते औदासीन्य रहना मुक्ति है पुराणवाले सालोक्य सामीप्य सारूप्य सायुज्यकूं मुक्ति कहते हैं चार वाक् कहते हैं किसी के आधीन न होना मुक्ति है न्यायशास्त्र वाले कहते हैं २१ दुःखोंका अत्यन्त नाश होजाना मुक्ति है २१ दुःख न्याय शास्त्र में प्रसिद्ध हैं अत्यन्त नाश अत्यन्ताभाव कूं कहते हैं अभाव चार प्रकार का है प्रागभाव जो घटसे प्रथम घटका अभाव प्रध्वंसाभाव जो घट के नाश होजाने में घटका अभाव अन्योऽन्याभाव जैसे घट में पटका अभाव अत्यन्ताभाव जैसे शशे के सींगका अभाव और अनेक ब्रह्मलोक गोलोकादिकी प्राप्ति कूं मुक्ति कहते हैं गरुड़वाले जो कहते हैं सो तो लोकमें बहुत प्रसिद्ध है और भी अनेकमतहैं

अब विचारना चाहिये मुक्तिका क्या अर्थ है इसका भी निश्चय शारीरकभाष्य में कियाहै कि अविद्योपहित जीव नामा शुद्ध चैतन्य का प्रतिबिम्ब मिथ्याभ्रांति से आपकूं जीव मानता है अविद्याकी उपाधि से समस्त संसार मुक्तिपर्य्यन्त कल्प रक्खा है ब्रह्मज्ञान से अविद्या का नाश हुये सन्ते जीवरूप भ्रांतिका दूर होना यो मुक्ति है सर्व अनर्थों की निवृत्ति परमानन्द की प्राप्ति इसी मुक्तिका लक्षण है जैसे किसी घटगत जल में जो प्रतिबिम्ब सो जल के दूर होने से नाश होजाताहै फिर यो नहीं कहा जाता कि प्रतिबिम्ब कहां गया और प्रतिबिम्ब के नाश होने और न होनेमें सूर्य कुछ और प्रकार के नहीं होजाते दृष्टान्त में समझो कि शुद्ध चैतन्य जैसे प्रथम था वैसेही पीछे रहा जैसे स्वप्न के खुलते हुये स्वप्न में जो पदार्थ कल्प रक्खे ये सब उसी समय नाश होजाते हैं ऐसे पीछे विदेहमुक्ति के समस्त संसार नाश होजाता है कोई ऐसा न विचार करे मैं तो मुक्त होजाऊंगा मेरे शत्रु मित्रादि और जगत् बना रहेगा उनके पीछे के लिये यत्न करना मूर्खता है स्वप्न के दृष्टांतकूं भले प्रकार विचारना चाहिये वेदांतशास्त्रवालों का जो कहनाहै वोतो अनुभव में भी आता है श्रुति स्मृति आदि प्रमाण करके सिद्ध होसक्ता है और किसी शास्त्र पुराणादिका मत अनुभव में नहीं आताहै वेदों से विरुद्ध स्पष्ट प्रतीत होताहै विचारो जैसे जीव का देहपात हुआ वा यमपुरी कूं वा स्वर्गकूं वा पितृलोक वैकुंठादिकूं गया वा उसका जन्म उसीसमय इसइलोकमें होगया वा नरक

वाले जो कहते हैं या उसी की व्यवस्था हुई और जो बात कैसे अनुभवमें आवे कि सारी अवस्था में तो मूर्खताके काम करे अन्तकाल में काश्यादि में मरने से नियम करके मुक्त होजाता है जो ऐसे वाक्यों में हठ करते हैं तो मुक्तिके लिये ज्ञानादि में क्यों माथा मारते हैं कहांतक लिखें हजारों ऐसी व्यवस्था हैं सब मतवाले अपने २ मतकूं युक्तिदे देकर सिद्ध करते हैं परन्तु समस्त व्यवस्था कोई भले प्रकार नहीं कहते क्योंकि कोई स्वर्गकूं नित्य कोई अनित्य कहते हैं कोई। काश्यांमरणान्मुक्तिः। इस श्रुतिका अर्थ औरही प्रकार कहते हैं और यो भी भले प्रकार नहीं प्रतीत होता कि स्वर्ग वैकुंठ कैलास ब्रह्मलोक गोलोकादि का कैसे भेद है जैसे कि सातलोक भूर्भुवादिहैं उनमेंही उनका अन्तर्भावहै वा कुछ और प्रकार है अथवा जिसकूं ब्रह्मलोक कहते हैं उसी कूं वैकुण्ठपितृलोकादि कहते हैं जैसे यो स्थित की व्यवस्था है इससे सिवाय सृष्टिकी व्यवस्थाहै क्योंकि जब प्रत्यक्षकी व्यवस्थानहीं बैठसकी परोक्षकी कौन बैठासके यद्यपि यो व्यवस्था न कहीं लिखीहो परन्तु मेरे श्रवण करनेमें नहीं आई जो किसी ने सुनीहो प्रमाणपूर्वक अनुभव में आवे तो हमकूं भी योहीं इष्टहै कि जैसे बने संशय दूर कर देना चाहिये यथा मति मैं कहताहूं किसीपक्षमें मेरी हठनहीं योजो व्यवस्था तो मुझकूं शास्त्रमें प्रतीत होती है और लोकमें यवनादि बहिस्तादि कहते हैं और इस बातमें तो किंचित् भी संदेह नहीं कि परमेश्वर सबका एकहै और यो भी निश्चय होता है यवनादि भी नरक स्वर्गादिके अधिकारी हैं यो

नियम नहीं कि सब नरकही कूं जावें क्योंकि श्रीभगवान् कहतेहैं सत्त्वगुणी ऊपर के लोकोंकूं प्राप्त होवेगा शम दम संतोष दया कोमलता क्षमा दानादि सत्त्वगुणकी वृत्ति है उनमें दीखतीहै इस हेतुसे निश्चय होताहै सत्त्वगुण की तारतम्यतासे स्वर्गादिके अधिकारी हैं तात्पर्य इन सबके मतों से मेरी जानमें अविरोध व्यवस्था नहीं बैठ सक्ती परंतु वेदान्तशास्त्र के मत से बैठ सक्ती है सो सुनो वेदान्तशास्त्रवाले ऐसा कहतेहैं कि यो जगत् अज्ञान करके कल्प रक्खाहै स्वप्नवत् मिथ्या है जैसे स्वप्नमें एक स्त्री के साथ एकसमय १० पुरुष संगकरें दशोंका सच्चा है बिचारनेसे झूंठाहै तदुक्तम्॥ चौपाई॥ देखिय सुनिय गुणिय मन माहीं। मोहमूल परमारथ नाहीं॥ अर्थात् जगत्का कारण मूल अज्ञानही है परमार्थ में नहीं जैसे एक रज्जु पड़ी है कोई उसकूं सर्प कोई मूत्रधारा कोई दण्ड कहते हैं सबका कहना भ्रान्तिकालमें सच्चा परमार्थ में झूंठाहै ऐसे भ्रान्तिकालमें एक ब्रह्म में कल्पित स्वर्ग वैकुण्ठादि सब सच्चे परमार्थमें झूठेहैं इस बातकी सिद्धि में बहुत श्रुति स्मृति युक्ति दृष्टान्त इतिहासादि प्रमाणहैं वाशिष्ठादि ग्रन्थों में अनेक इतिहास हैं वशिष्ठजी ने श्रीरामचन्द्रजीकूं अनेक इतिहास सुनाकर इसीबातकूंसिद्धकिया है कई पुरुषोंने तप करके यो बरमांगा कि हमसब इसी कालमें ब्रह्मा होजावें वे सब ब्रह्मा होगये और ये ब्रह्माजी भी बनेरहे और उनके ब्रह्माण्ड सबके पृथक् २ हुये और एक ऋषिने तपकरके परमेश्वर से बरमांगा हे परमेश्वर! आपकी माया देखूं परमेश्वर ने कहा जो दृश्य पदार्थ हैं

सबमायाहै ऋषिकूं यों निश्चय रहा कि माया शब्दकरके
कोई और पदार्थ है फिर परमेश्वरसे प्रार्थनाकरी कि म-
हाराज नहीं घटने के योग्य यो पदार्थ उसके घटाने में
जो चतुर वो माया देखा चाहता हूं महाराजने बर दे
दिया कि देखोगे एक दिन वे ऋषि हृषीकेशस्थान में गं-
गाजी में स्नान करतेथे गंगाजीके तीर आसन पूजादि
रखदिये ऋषिने जलमें जो चुबकी मारी सो वे ऋषि अ-
पना ऋषिपना तो भूलगये किसी धीवर की लड़की हो-
गये कालपाकर उसलड़की का बिवाह होगया ४० वर्ष
की अवस्था में कई लड़के व लड़की उसके उत्पन्न हुये
और अपने पति के संगमें जो आनन्द और संग करके
दुःख और संसारके अनेकताप और बालकोंके खिलाने
देखने में जो आनन्द और मल मूत्र धोने में जो दुःख सब
कूं वे ऋषि स्त्री होकर अनुभव करते भये एकदिन वो स्त्री
उसी जगह जहां ऋषिने चुबकी मारीथी जल भरने के
लिये गई घटकूं गंगाजी के तीरे रखकर गंगाजीमें स्नान
करने लगी जब नीचे कूं चुबकी मारी जबतो वो स्त्री थी
जब ऊपरको मुख उघाड़ा तब अपने शरीरकूं देखे तो
ऋषिका शरीर होगया और गंगाजीकेतीरे घटभी रक्खा
दीखता है आसन पूजाभी रक्खी हुई दीखती है यो भी
स्मरण होता है मैं असुक ऋषिहूं नित्य यहां स्नान क-
रने के लिये आताहूं और योभी स्मरण होता है मैं असुक
पुरुषकी स्त्रीहूं यहां जल भरने के लिये आई थी पहले
घरकाभी व्यवहार स्मरण होता है पिछले घरका भी
व्यवहार स्मरणहोताहै दोनों घरोंमें प्रीति है स्पष्ट यो

निश्चय नहीं होसक्ताहै कि मैं ऋषि वा स्त्रीहूं उसकाल में उस स्त्रीका पति अपने लड़के कूं गोद लिये हुये उसी जगह आया ऋषिने देखा कि निश्चय योही मेरा पति है फिर भलेप्रकार निश्चय होगया कि मैं गंगाजी में स्नान करने से ऋषि होगया उस पुरुष ने ऋषि से बूझा महाराज मेरी स्त्री यहां जल भरने आई थी घट उसका यो रक्खा है वो कहां गई आपने भी उसकूं देखी है जो उसका वाक्य सुनकर और बालक लड़के कूं देखकर मोह होगया ऋषि रोने लगा उस पुरुषने प्रार्थनाकरके बूझा महाराज वो स्त्री गंगाजीमें डूबगई वा किसी सिंहादिने खालिया और तुम क्यों रोतेहो ऋषि कहतेहैं वो स्त्री तो मैं हूं गंगाजीमें स्नान करनेसे ऋषि होगया इसबातकी सिद्धि के लिये समस्त व्यवस्था पिछलेघरकी और लड़केलड़कियोंकेनामादि कहदिये उस पुरुष कूं निश्चय होगया कि बेसंदेह यो मेरी स्त्री है ऋषि उस पुरुषसे कहते हैं इसलड़केकूं भलेप्रकार पालना यो करना वो करना उसने कहा कि तुम घरको चलो जो हुआ सो हुआ बालकोंकूं खिलाते रहना और घरके काम करतेरहना ऋषिजी उसके साथ हुये उसी समय वो परमेश्वर की माया दूर होगई यो व्यवस्था कोई एक पलमें बीती जितनी देर जल में चुबकी मारी जब ऋषि जीने ऊपरकूं शिर उभारा देखतेहैं वोही महीना वोही मुहूर्त्त न वो पुरुष न वो घट है ऋषिजी कूं निश्चयहुआ यो परमेश्वर की माया देखी स्कन्दपुराण में केदारखण्ड में यो कथा भलेप्रकार लिखरही है और

वाशिष्ठादि ग्रन्थोंमें ऐसी बहुत कथाहैं और बहुत प्रा-
णियों कूं यो बात प्रत्यक्षहै कि स्वप्न तो घड़ी वा दोघड़ी
रहा और राज्यादि १०० वर्ष किये भले प्रकार बिचारो
माया में क्या नहीं बनसक्ता और यो जाग्रत् निश्चय
स्वप्नकी बराबर है क्योंकि जाग्रत् के पदार्थदुःख सुख
के हेतु हैं और अनित्यहैं ऐसेही स्वप्न के पदार्थ हैं और
जैसे जाग्रत् में स्वप्न का निश्चयकर कहते हैं ऐसे स्वप्न
में भी स्वप्न का निश्चय किया करते हैं तात्पर्य यो जा-
ग्रत्में जो प्रपञ्च दीखता है समस्त स्वप्न की बराबर हैं
माया है इससे सिवाय और क्या माया होगी कि गर्भ
में ठहरकर वीर्य चेष्टा करने लगता है और बहनेवाला
जो पदार्थ वीर्य्य है उसका कार्य कैसा कठिन होजाताहै
फिर उसी वीर्य में देखो कैसे हाथ पैरादि बन जाते हैं
फिर वोही ब्राह्मण साधु चोर जार कहा जाताहै किसी
कालमें तो वो लाड़ करने के योग्य किसीकालमें भोग
करने के योग्य किसी कालमें पूजन करने के योग्य हो-
ताहै किसी कालमें उसकूं देखकर प्राणी ग्लानि मानतेहैं
किसीकाल में उसके पुत्रादि चाहते हैं कि यो मरजावे
तो सुन्दर है किसी काल में उस शरीर के स्पर्श करने
से पातक लगता है मकान वस्त्रादि अपवित्र होजाते हैं
विचारो एक पदार्थ में कितनी कितनी अवस्था बीतती
हैं जो एकरस पदार्थ नहीं सब कूं एकप्रकारका न दीखे
सोई माया है चित्त तो बहुत चाहता कि ऐसी २ कथा
लिख कर इस बात कूं करामलकवत् सिद्ध करदें परन्तु
ग्रन्थका विस्तार होता है बुद्धिमान् एक दृष्टान्त में वि-

चार ले अब बिचारो कि वेदांतशास्त्र का मत कैसा सुन्दरहै परमेश्वर कूं तो परिपूर्ण नित्यमुक्त नित्यानन्दादि रूप सिद्धकरना भक्ति ऐसी करनी अपना आपा समस्त परमेश्वरमें झोक देना अपने अंशके न रखने से परमेश्वरकी पूर्णता सिद्धहोती है और सबके मतकूं अङ्गीकार करना सच्चा बताना यद्यपि स्वप्न के पदार्थ झूठे हैं परन्तु उस समयमें तो सच्चे हैं और सब मत वाले अपनेही मतकूं हठ करके सिद्ध करते हैं औरोंकी असूया करते हैं पूर्व मीमांसावाले परमेश्वरकूं नहीं मानते जो भेद उपासनावाले परमेश्वर कूं मानते भी हैं तो परिच्छिन्न मानतेहैं जबजीव ब्रह्म का भेद कहा स्पष्ट प्रतीत होता है परमेश्वर परिच्छिन्न है और जो वे ऐसा कहैं कि परमेश्वर की मायामें क्या नहीं बनसक्ता तो परमेश्वर उन कूं आनन्द रक्खे क्योंकि योही हमारा सिद्धांत है जब भेदवादियों का अपने मत में ठिकाना नहीं पाता तब माया कूं अंगीकार करते हैं माया कूं अंगीकार किया और वेदांतशास्त्र में प्रवेश हुआ क्योंकि वेदांत से सिवाय और कोई प्रमाण नहीं वेदांत कूं त्याग करके वृथा और अनात्मशास्त्रों में माथा मारते हैं १८ विद्या हैं मुक्ति के लिये मुख्य वेदान्त शास्त्रहै १४ विद्या तो ये हैं ऋग्, यजुः, साम, अथर्वण ये चार वेद और ६ इनके अंग शिक्षा, कल्प, व्याकरण, ज्योतिष्, छन्द, निरुक्त और मीमांसाशास्त्र, तर्कशास्त्र, पुराण, धर्म्मशास्त्र ये १४ विद्या हैं वेदान्तशास्त्र का मीमांसा में अन्तर्भाव है वैशेषिक शास्त्र का तर्कशास्त्र में और सांख्य पातं-

जलि पशुपति वैष्णव रामायण भारतादि का धर्मशास्त्र में अन्तर्भाव है पुराण १८ हैं ब्राह्म पाद्म स्कन्द मार्कण्डेय शैव वैष्णव गणेश सौर भागवत भविष्यत् ब्रह्मवैवर्त्त लिङ्ग बामन बाराह कूर्म्म मत्स्य गरुड़ ब्रह्माण्ड और उपपुराण वाशिष्ठ लिङ्ग नारसिंह नन्दीय नारदीय बामनीय हंस तत्त्वासार दौर्वास्य शिवधर्म कापिल बामन वरुण रेणुक बायवीय कालीय महेश्वर पाराशर मारीच भार्गवादि भेद से बहुत हैं मनु याज्ञवल्क्य विष्णु यम आंगिरस वशिष्ठ दक्ष संवर्त्त शातातप पाराशर गौतम शङ्ख लिखित हरित आपस्तम्बी संस कात्यायन बात्स्यायन बृहस्पति देवल बारद पैठीनसी इनके और औरों के भी किये हुये बहुत धर्म्मशास्त्र हैं कोई १८ विद्या कहते हैं धनुर्वेद गांधर्ववेद अर्थशास्त्र ये चार मिलकर १८ होजाती हैं कामशास्त्रका आयुर्वेद में अन्तर्भाव है नीतिशास्त्र शिल्पशास्त्र अश्वशास्त्र गजशास्त्र रूपकार शास्त्र और ६४ कलाओं का अर्थशास्त्र में अन्तर्भाव है इसप्रकार १८ विद्या हैं वेदान्तशास्त्र का यो सिद्धांत है कि यो संसार स्वप्नवत् निष्प्रपञ्च ब्रह्म में भ्रान्ति करके नानाप्रकार की कल्पना कर रक्खी है जैसे कोई बागड़भूमि में दूरसे रेती कूं देखकर कहै कि यो नदी है कोई कहता है इसमें गोड़े जल है कोई कमर जल कोई अगम्य जल कहता है तात्पर्य सबकी कल्पना झूठी है जो जगत् सच्चा होता तो बड़े बड़े बुद्धिमान् मीमांसा सांख्य पातञ्जलि न्यायशास्त्रादिवालों का सब का एक मत होता सब का मत पृथक् २ होने से स्पष्ट प्रतीत

होताहै कि निष्प्रपञ्च ब्रह्म में भ्रान्तिसे जगत् कल्पितहै इस बातकी सिद्धि में बहुत श्रुति स्मृति आदि प्रमाण हैं और अनुभव में भी आवे हैं जैसी जैसी किसी की बुद्धि है वैसेही वैसा जगत् कूं कहते हैं और ईश्वर कूं भी यथा-मति अंतर्यामी से लगाकर कुलदेवता माता शीतला पीपल वृक्षादि जड़पदार्थ तक कहतेहैं सो कुछ थोड़ा थोड़ामत उनकाभी प्रसङ्गसे सुनो पूर्व मीमांसाशास्त्रवाले तो कहते हैं कर्म करने से मुक्ति होतीहै स्वर्गादि प्राप्ति कूं मुक्ति कहते हैं कर्म फलदाताहै और कोई ईश्वर नहीं स्वर्गादि नित्य है उनकी उत्पत्ति प्रलय नहीं कोई एक-देशी उनके ईश्वर कूं भी मानते हैं सांख्यशास्त्रवाले यह कहतेहैं कि जैसे दूधका दधि परिणाम होजाता है ऐसे प्रकृति जगत् रूप करके परिणाम होगई है और पुरुष जलगत पद्म पत्रवत् असंग है तात्पर्य परिणाम बाद सांख्यशास्त्रवालों का है आरम्भ बाद या शास्त्रवालोंका है न्यायशास्त्रवाले यो कहते हैं कि यो जगत् प्रलय के समय ईश्वर की इच्छा से परिणाम रूप होजाता है अर्थात् पृथ्वी जल तेज बायुके परिमाणु होजाते हैं और सृष्टि के समय ईश्वर की इच्छा से परिमाणु मिलकर द्व्यणुक त्र्यणुक होकर फिर ऐसेही पृथ्वी आदि होजाते हैं और कहते हैं इस जगत् में सब सात पदार्थ हैं पृथ्वी जल तेज बायु आकाश काल दिक् आत्मा मन इन ९ पदार्थों कूं तो एक द्रव्य बोलते हैं और रूप रस गन्ध स्पर्श संख्या परिमाणु पृथक् संयोग बिभाग परत्व अप-रत्व गुरुत्व द्रवत्व स्नेह शब्द बुद्धि सुख दुःख इच्छा द्वेष

प्रयत्न धर्म अधर्म संस्कार इन २४ पदार्थोंकूं एकगुण बोलते हैं ये गुण द्रव्यों में रहते हैं इसीप्रकार कर्म सामान्य विशेष समवाय अभाव ये पांच पदार्थ हैं और यावत् जगत् में पदार्थ हैं उनका इन्हीं सात पदार्थों में अन्तर्भाव है जीव ईश्वर का भेद कहते हैं जीव ईश्वर दोनों व्यापक हैं पृथिवी आदि च्यार द्रव्यकूं परमाणु रूपकरके नित्य कहते हैं आकाशादि पांच द्रव्यकूं सदा नित्य कहते हैं व्याकरणवाले कहते हैं शब्द ब्रह्म है सो नित्य है तात्पर्य वैयाकरण स्फोटवादी हैं पुराणवालों का मत प्रसिद्ध है कोई विष्णु कोई शिव शक्ति गणेश सूर्यकूं ईश्वर कहते हैं अपने अपने मतके पृथक् २ शास्त्र सात्वत तंत्र नारद पंचरात्र कवल्यार्णवादि बना रक्खे हैं तात्पर्य पुराणवालों का मत जैसा कि गरुड़वाले कहते हैं यो बहुत प्रसिद्ध है कहां तक लिखें बहुत मत हैं सांख्य न्याय शास्त्रादिवालोंका मत उसी जगह निश्चय होसक्ता है यहां तो एक नाममात्र उनका मत दिखा दिया है और नास्तिक बौद्धचार्वाक् आदिके १८ मत तो मुख्य हैं और भी बहुत भेद हैं वे ईश्वर वेद कूं नहीं मानते कोई शून्यवादी कोई कालवादी कोई स्वभाववादी कोई विज्ञानवादी हैं कोई कपाली मतके हैं नानामत नास्तिकों के हैं और कठिन हैं पुराण वालोंके मतसे उनका बहुत बारीक मत है ऐसे ऐसे मत न्याय वेदान्त के पूर्व पक्षों में बहुत लिख रहे हैं क्योंकि वेदान्त नैयायिक उनके मतकूं खण्डन करसक्के हैं पुराणवालोंसे उनका मत खण्डन नहीं होसक्ता उनकी युक्ति बहुत बारीक है और जो पाखण्ड

अब कलियुग में प्रसिद्ध है उनका लिखना योग्य नहीं तात्पर्य चारवर्ण चारआश्रम और अनुलोमज प्रतिलोमजादि जातिशास्त्र बिहित हैं उनसे पृथक् जिसका वेद स्मृतियों में पता न लगे सब पाखण्ड मनुष्यों के रचे हुये हैं बुद्धिमान् को विचार लेना चाहिये अन्तर्यामी हिरण्यगर्भ विराट् कूं वैदिक उपासनावाले ईश्वर कहते हैं शिव विष्णु शक्ति सूर्य गणेशादि कूं पुराणवाले ईश्वर कहते हैं भूम या भौपाल भूत पिशाच योगिनी आपा पीपल कुदालादि अनेक हैं उनकूं प्राकृत जीव ईश्वर कहते हैं इसके पूजनेसे सृष्टिहोती है इस हेतुसे वे ईश्वर कहते हैं वेदोंमें और लोकमें अन्तर्यामी सूत्रात्मादि भेद करके विष्णु शिवादि भेद करके राम कृष्णादि भेद करके राधावल्लभ गोपालादि भेद करके हनुमान् भैरवादि भेद करके पाषाणमृत्तिकादि भेद करके हजारों ईश्वर के प्रतीत होते हैं अब बुद्धिमान् बिचारैं कौनसा ईश्वर सच्चा है कौनसा मत सच्चा है हम सत्य कहते हैं योंही विचारो कि यह सब मायाहै विवर्तवाद आभासवाद अजातवाद वेदांतशास्त्रवालोंका है सोई सत्य है और तत्त्वं पदों का जो एक लक्ष्यार्थ सच्चिदानन्द रूप है सोई परमेश्वर है इसी कूं ज्ञान कहते हैं योही ज्ञान मुक्तिका हेतु है॥

इति श्री आनन्दामृतवर्षिण्यष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

अथ नवमोऽध्यायः ॥

सू० । देहादिके साथ तादात्म्यकरके देहादि में जो अहंबुद्धि इसीकूं अज्ञान कहते हैं यो विचारो कि आत्मा

तो शुद्ध १ परिपूर्ण २ सत्य ३ चैतन्य ४ आनन्द ५ अखण्ड ६ अज ७ अमर ८ एकरस ९ और भी बहुत विशेषण हैं और अशुद्ध देह १ परिच्छिन्न २ असत्य ३ जड़ ४ दुःखरूप ५ एकदेशी ६ जन्मवाला ७ नाशवाला ८ नित्य एक रस नहीं रहता ९ आत्माकी और देहकी जो एकता देखते हैं इससे परे और क्या अज्ञान होगा इस अज्ञान का कारण आसुरी सम्पत् है सोई दिखलाते हैं दम्भ दर्प अहंकार अपवित्र अभिमान ईश्वरकूं न मानना क्रोध कठोरता मूर्खता धर्मकी प्रवृत्ति कूं न जानना अधर्मकी निवृत्तिकूं न जानना असत्य बोलना जगत्कूं अनीश्वरकहना बड़ी २ कामना मनमें रखनी जो कभी पूर्ण न हो खोटे खोटे आग्रह करके सज्जनों से वैर करना गुणवानों में दोष निकालना बुद्धि तमोगुणी होनी अर्थात् हमने कथा कहीथी उससे हमारीक्षती हुई शास्त्रवालोंकूं पाखंडी कहना चिन्ता ऐसी ऐसी करनी जिसका प्रलय पर्यंत ठिकाना न लगे निश्चय यो रखना जो हम खा पहर जावेंगे स्त्रियों के साथ आनन्द भोग जावेंगे यही मुख्यहै देना नट बन्दरवालों कूं कभी किसी साधु ब्राह्मणकूं जो देना तो दम्भ अहंकार करके और उनका तिरस्कार करके हजारों आशारूपी फांसियों में बँधे रहना अन्याय करके रुपयादि संचय करना यो मुझकूं प्राप्तहै जो प्राप्त करूंगा मेरी बराबर और कौन है धन हमारे बहुत कुटुम्ब हमारे बहुत ऐसे २ अवगुण आसुरी सम्पतवालोंकूं श्रीभगवान्ने कहे फिर कहा ऐसे पुरुषों की मुक्ति तो दूर है मुक्ति कहीं

मार्ग भी उनकूं नहीं मिलेगा ये पुरुष जगत् के भ्रष्ट करनेवाले हैं ऐसों कूं हम पशुकी योनियों में फेंकेंगे बारम्बार सर्प बिच्छू कीट शूकर कूकरादि योनियों में जन्म लेते रहेंगे फिर कहा काम क्रोध लोभ ये तीन न-रकके द्वारे हैं आत्माकूं मूढ़ योनियों में प्राप्त करने वाले हैं उनकूं तो अवश्यही त्याग करना चाहिये प्रथम उनकूं त्याग करके जो पीछे मुक्तिमें प्रयत्न करेगा तब सिद्ध होगा अर्जुन ने श्रीकृष्ण महाराज से प्रश्न किया। महाराज किस करके प्रेराहुआ यो पुरुष पापकूं करता है इच्छा नहीं भी करता परंतु ऐसा प्रतीत होता है जैसा कोई बल करके पापमें जोड़ दे श्रीभगवान् ने कहा हे अर्जुन! जो तुमने बूझा पाप करने में क्या हेतु है सो सुनो काम हेतुहै कामना होने से क्रोध होता है रजोगुणसे इसकी उत्पत्तिहै रजोगुणके जय करने से इ-सका भी जय होजाताहै अनंत है भोजन जिसका बड़ा पापी मोक्षमार्ग का बैरी कामकूं जानो जैसे धूप ने अग्नि कूं मलने दर्पणकूं जरने गर्भकूं ढक रक्खा है ऐसे काम ने विवेक कूं ढक रक्खा है प्राकृतियों कूं तो यो काम भोग समय मित्रसा प्रतीत होता है ज्ञानी कूं तो भोग समय भी दोषदृष्टि होने से बैरी दीखता है कितनाही भोग भोगो कभीतृप्ति न हो और दूनी अग्नि लगै इस की जयका उपाय यो है यो काम इन्द्रिय मन बुद्धि में रहता है क्योंकि विषयकूं देखा सुना संकल्प विकल्प किया निश्चय किया फिर कामका आविर्भाव होजाता है सो काम विवेक कूं आवरण करके आत्मा कूं मोहता

है इसलिये यावत् इन्द्रिय का विषय के साथ सम्बन्ध नहींहुआ प्रथम मोहसे विषयों में दोषदृष्टि करके इन्द्रियोंकूं रोकना फिर इन्द्रिय नहीं रुकसक्ती देह इन्द्रिय मन बुद्धिसे परे जो आत्मा उसकूं आश्रय करके इस पापी कामकूं मारा जैसा यो परमेश्वरने अर्जुन कूं उपदेश किया ऐसाही किसी गुरु ने शिष्य कूं उपदेश किया कि हे शिष्य! ये काम क्रोधादि प्रथम तो ज्ञानकी सिद्धिके लिये त्यागने योग्यहैं और ज्ञानहुये पीछे जीवन्मुक्तिके लिये त्यागने योग्यहैं शिष्य कहताहै महाराज जीवन्मुक्ति मुझकूं मतहो देहपातके पीछे तो मैं बिदेह मुक्त होजाऊंगा गुरू कहते हैं जो तुमने यहांके तुच्छ पदार्थों के भोगने के लियेजीवन्मुक्तिका अंगीकार नहीं किया तो निश्चय होता है स्वर्गादि पदार्थों के भोगने के लिये बिदेह मुक्तिका भी अंगीकार नहीं करोगे इसहेतुसे प्रतीत होता है तुम स्वर्गमात्र से आपकूं कृतार्थ जानोगे फिर निश्चय आपका जन्म होवेगा जो कभी तुमने अपने मन में यो मानाहो कि स्वर्गक्षय अतिशय साहस्य पतन इन तीन दोषों करके त्यागना योग्य है॥

टी०। दिन दिन प्रति अपना किया हुआ पुण्य काम होता रहता है इसकूं तो क्षय दोष कहते हैं और जैसे इस लोक में चक्रवर्त्ति राजा से लगाकर कङ्गाल पर्यन्त तारतम्यताहै ऐसे स्वर्ग मे विमान ऐश्वर्यादिकी तारतम्यता है अपने से अधिक विमानवाले कूं देखकर मन में अतिशय रहता यो दूसरो दोष है और जब समस्त पुण्य नाश होता है तब उसके गले की माला सूख जाती है वो

तो अपने आप वहांसे नीचे गिरना नहीं चाहती परन्तु वही स्त्री जिसके साथ विहार करताथा टांग पकड़कर उलटा डाल दिया करती है तीसरा यो साहस पतनदोषहै।

मृगादि विचारो कि इन तुच्छ पदार्थों में जो अनेक दोष करके युक्त हैं श्रीभगवान् भी कहते हैं ये शब्द स्त्री आदि भोग निश्चय दुःखके कारण हैं उनके नाश अप्राप्ति में जो दुःख हैं सो तो प्रसिद्ध हैं परन्तु प्राप्तिकाल में भी स्पर्धा निन्दा भयादि दोषों करके युक्त दुःखरूप हैं फिर उन में दोषदृष्टि करके क्यों नहीं त्यागते जब ये तुच्छ पदार्थ न त्यागे गये स्वर्गादि के पदार्थों कूं कैसे त्यागोगे और यो तुम्हारा इच्छापूर्वक आचरण अनिष्टहै इस बात में श्रीसुरेश्वराचार्यजी के वाक्य कूं प्रमाण देते हैं जाना है ब्रह्मतत्त्व जिसने उसका जो इच्छापूर्वक आचरण हुआ तो कूकर पशु आदि और ज्ञानियों में क्या भेद हुआ जब धर्म कर्म शास्त्रकी आज्ञा कूं न मानकर इच्छा-पूर्वक आचरण किया फिर अशुचि भोजन में किस प्रकार दोष प्रतीत होगा शिष्य कहता है महाराज मुझकूं इतने ही मात्रसे अनिष्ट सूचन किया गुरु उपहासपूर्वक कहते हैं ज्ञानसे प्रथम तो तुम कूं मलमात्र के दोषों करके क्लेश था अब समस्त लोगों की निन्दा सहनी अंगीकार करते हो आपके बोधकी क्या स्तुति हो सके आपके बोधका जो वैभव है सो आश्चर्य है ऐसा बोध तो हमकूं भी नहीं हुआ यो बात लोकमें प्रसिद्ध है जो काले कम्बल पर और भी छींट स्याही की पड़जाय तो कुछ नहीं प्रतीत होती परन्तु श्वेतचादर पर जोएक छींट भी और रंगकी पड़जावे

वो भी दूरसे चमकती है ऐसे ज्ञानी का जो किञ्चित्‌भी अन्यथा आचरणप्रतीति होतोभी मूर्ख उसबातकूं बढ़ाकर कुछ कुछ कल्पके लगाते हैं सो तो उनकूं विचारही नहीं कि जो विधिनिषेध व्यवहार है सो गुणोंका कार्य है अर्थात्‌ उनका अंशरूप है और जो स्वसंवेद लक्षण ज्ञानीके हैं उनकूं मूर्ख क्या जानेंगे केवल जड़भरतादि के दृष्टान्त दे देकर निन्दा करेंगे और जो उनकूं कहा बोध हैकि ये तीनों गुण सदा विदेह मुक्त से प्रथम सबमें देवताओं सें लगाकर पशु पर्यन्त रहते हैं किसीके थोड़े किसी के बहुत और ये सब देखना सोना खाना पीना आदि अन्तःकरण का धर्म है अन्तःकरण मायाकाकार्य होनेसे मिथ्याहै कोई कोई तो ऐसा जानते हैं कि अन्तरंग साधन मुख्य है बहुत तो बहिरंग साधनोंकूं प्रमाण देदेकर निन्दा स्तुति करते हैं शिष्य कहता है महाराज फिर क्या करना चाहिये गुरु कहते हैं करना क्या चाहिये यो करना चाहिये जो शूकर कूकर की बराबरता है इसकूं वमनवत्‌ त्यागदो तुम तो विचारवान्‌हो जितने अन्तःकरणगत दोष हैं सबका संग त्याग करके देवता की बराबरता अंगीकार करो तुम इन मनुष्यों करके देवता कि सम पूजने के योग्यहो काम क्रोधादिमें जो जो दोष दुःखहैं सब मोक्षशास्त्र में प्रसिद्ध हैं वहांसे तलाश करके दोषदृष्टि कर कर कामनादि का त्यागकरके जीवन्मुक्ति सम्पादन करो शिष्य कहता है महाराज मैंने अंगीकार किया कामादिका तो त्याग कर लूंगा परन्तु मनोराज्यकरनेमें तो मेरीशक्ती नहीं गुरु कहते हैं मनोराज्य कूं समस्त दोषों का बीज होने से अभिमान

वान् ने क्षती कहीहै उस अर्थकूं घटाते हैं बैठे बैठे मनो-
राज्य हुआ अमुक पदार्थ में अर्थात् स्त्रियादि में यो गुण
है उस गुणको ध्यान करते करते उस पदार्थ में सूक्ष्म
संयोग होगया संग होने के पीछे फिर अधिक कामना
होगई कामनारूपी जो अग्नि उसकी शान्ति के लिये
किसीके पासगये कहा हमकूं यो वस्तु चाहती है उन्होंने
न दी तब क्रोध उत्पन्न हुआ अब अपने दोषकूं तो बिचा-
रते नहीं कि यो मेरे मनोराज्यने अनर्थ कियाहै उसमें दोष
निकालते हैं कहते हैं देखो कैसे पापी अधर्मात्माजी हैं
साधु ब्राह्मणकी आज्ञा नहीं करते क्या धन छातीपर धरके
लेजावेंगे और अनेक कहने न कहने के योग्य शब्दों कूं
कहते हैं और जो मनमें ताप होता है उसके तो आप
साक्षी हैं फिर क्रोध से सम्मोह अर्थात् कार्य अकार्य के
विवेक का अभाव होगया फिर जो शास्त्र गुरु से सुना
सब भूल गये फिर चेतना रूपी बुद्धिका नाश होगया
अर्थात् फिरभी होशियार होजावें यो बुद्धि न रही फिर
अपने पुरुषार्थ से भ्रष्ट होगये विचारो मनोराज्य ने कैसो
अनर्थ किया जो मनोराज्य होकर मन में कामनाआई
थी तो उसमें प्रवर्त्त न होनाथा जो प्रवर्त्त भी हुये थे तो
उनके न देनेमें जो अपमानहुआ था उसकूं सहजाना था
उनकूं कुछ यद्वा तद्वा न कहनाथा जो उससमय इनकार
भी करदियाथा अथवा दुर्वाक्य भी कहदियाथा तो फिर
सत्त्वगुणी वृत्तिमें काम आते जो कुछ वे दाता भी थे
आगे कूं जो उनसे काम निकलता सो सब नष्ट होगया
उनकूं तो क्रोध में आकर यद्वा तद्वा कह बैठे फिर यो

मुख न रहा कभी उनके समीपही जा बैठें और जो कभी उनके सत्त्वगुणी वृत्तिका विशेष उदय हो और बहुत दान करें तो आपकूं कुछ नहीं मिलसक्ता सारी अवस्था कूं तो उनसे मुरव्वत तोड़ बैठे और जिन्होंने सुना उन्हों ने भी अपने आपसे मन फेर लिया वारम्वार विचारो मनोराज्य बड़ा अनर्थ करताहै इसलिये मनोराज्य का भी जय करो मनोराज्य कामनाका जयकरने से ज्ञानद्वारा मुक्त होजाता है ॥ इति श्रीआनन्दामृतवर्षिणीनवमो ऽध्यायः॥ ९॥

अथदशमोऽध्यायः ॥

प्रथम थोड़ेसे साधन जीवन्मुक्तिके लिये लिखभी आये हैं अब औरभी सुनो जिनके अनुष्ठान करने से कामादि का जय होजाताहै साधककूं तो अभ्यास करने से सिद्ध होतेहैं सिद्ध में स्वभाव से रहते हैं जीवन्मुक्ति के ५ प्रयोजन हैं प्रथम उनकूं लिखतेहैं ॥ ज्ञानरक्षा १ तप २ विस्मयादिका अभाव ३ दुःखों की निवृत्ति ४ सुखका आविर्भाव ५ अर्थ इनका यो है जीवन्मुक्तिके अभ्यास करने से संशय विपर्य्यय का उदय नहीं होता शुक राघव अस्मदादिवत् अकृतउपासक कूं कदाचित् संशयादि के उदय होने के भयसे अवश्य जीवन्मुक्ति का अभ्यास करना योग्यहै श्रीभगवान् कहते हैं जिसके संशय है वो नाश होता है संशयादिका उदय न होना ज्ञानरक्षा १ चित्त की एकाग्रता तपहै सब धर्मों से श्रेष्ठहै ज्ञानी का तप लोकसंग्रहके अर्थहै श्रीभगवान् कहते हैं श्रेष्ठपुरुष

जो जो आचरण करताहै सोई सो और भी आचरण करते हैं संग्रह भले तीन प्रकारके हैं शिष्य १ भक्त २ तटस्थ ३ शिष्य तो गुरुके शास्त्रविहित आचरणकूं देखदेख अधिक अधिक श्रद्धा होकर फिर उनके वाक्य में विश्वासकरके मुक्त होताहै १ और भक्त उनकी पूजादि करके वांछित फलकूं प्राप्तहोता है * विभूतिकी कामनावाला ज्ञानी का पूजन करे जिस जिस लोककी मनसे भावना करेगा और जो जो कामना चाहेगा उसी उसलोक और उसीउस कामनाकूं प्राप्तहोगा यो श्रुतिकाअर्थहै स्मृतिकाभी अर्थ सुनो जो एकब्रह्म का जाननेवाला भोजनकरे तो समस्त जगत् तृप्तहोता है इसलिये जो कुछ देवेयोग्य है सो ब्रह्मवित्कूं देनाचाहिये तटस्थ दो प्रकारका है सन्मार्गी १ असन्मार्गी २ सन्मार्गी तो ज्ञानी के आचरणकूं देख देख अपने आप सदाचारकरके मुक्तहोगा, असन्मार्गी जीवन्मुक्तिकी दृष्टिकरके सारे पापों से मुक्त होगा यहां स्मृति प्रमाण है जिसकी अनुभवपर्यंत बुद्धि तत्त्व के विषय प्रवर्त्त है उसकी दृष्टिगोचर जो होगा अर्थात् कृपादृष्टिसे जिसकूं वे देखेंगे वो सारेपापों से छूट जावेगा जो ज्ञानी कूं वाणी आदिकरके दुःख देंगे मन करके द्वेष करेंगे वे ज्ञानी केपापकूं ग्रहणकरेंगे यहां श्रुति प्रमाण है सुहृद् ज्ञानी के पुण्य द्वेषी ज्ञानी के पापकूं ग्रहणकरेंगे योश्रुतिका अर्थ है २ जिस समयज्ञानी की बहिर्मुख वृत्तिहो उस समय उसकूं कोई दुर्वाक्य बोले उसकूं सुनकर अथवा वृथा कोई मार भी दे चित्त की वृत्तिमें राग द्वेष उदय न होना इसका मान विसंवदा

का अभाव है ३ संसार के व्यवहार में धन के सञ्च-
यादि में अनेक प्रकार के दुःख और मुक्ति के लिये श्र-
वणादि में अनेक दुःख हैं जीवन्मुक्त के सब दुःख नाश
होजाते हैं यदि आत्माकूं जानता है कि मैं यो हूं फिर
किसकी इच्छा करताहुआ और किस कामना के लिये
शरीरकूं दुःखदे यो श्रुति का अर्थ है ४ समाधिकरके
दूर करदिये हैं चित्त के मल जिन्होंने और आत्मा में
प्रवेश किया है चित्त जिन्हों ने उनकूं जो सुख होताहै
उसकूं वाणी नहीं कहसक्ती अपने अनुभवकरके जाना
जाता है यो श्रुतिका अर्थ है जैसे कोई १६ वर्षकी स्त्री
से १०।११ वर्षकी लड़की बूझे कि तू सुसराल में गई
थी तुझकूं पतिके संगमें क्या आनन्द हुआ जैसे वो
उस आनन्दकूं अनुभव करतीहुई उनकूं कमसमझ
जानकर हँसकर चुपहोजाती है ऐसे ज्ञानी ब्रह्मानन्दकूं
अनुभव करतेहुये औरों को कमसमझ जानकर मौन
रहते हैं यो सुखाविर्भाव पांचवां प्रयोजन जीवन्मुक्ति
का कहा ५ जीवन्मुक्ति के लिये जो अष्टांग योग कहते
हैं उसकूं भी थोड़ासा सुनो योग के ८ अंगहैं यम, नि-
यम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान, स-
माधि अर्थ इनका पातंजलिशास्त्र में भले प्रकार निश्च-
य होसक्ता है यहां इसलिये नहीं लिखा कि इस योग
करने की सम्प्रदाय लोप होरही है विना गुरु वो योग
सिद्ध नहीं होसक्ता जिसकूं ये योग करनाहो और कोई
गुरु मिले तो वहां से उनका अर्थ निश्चयकरे परन्तु
और प्रकार भी उनका अर्थ करते हैं परिपक है चित्त

जिनका वे इनका ऐसा अर्थ निश्चय करे देहादि में विरक्ति यम १ स्वात्मतत्त्व में अनुरक्ति नियम २ जैसे बैठे चलते लेटे सुखपूर्वक निरन्तर ब्रह्मका चिन्तवन होतारहे वही आसन है सुख पद्मादि आसन मन्द के लिये हैं ३ प्राणके चलतेहुये अपने पास सदा योग तप होतारहे सोऽहम् सोऽहम् सोऽहम् इसका जो अर्थ उस में चित्तकूं स्थितकरना अर्थात् योही निश्चय रखना कि मैं ब्रह्महूं ४ श्रोत्रादि इन्द्रियोंकूं शब्दादि विषयों से रोकनी प्रत्याहार ५ बुद्धिकूं विषयों से विमुख करना धारणा ६ जहां जहां दृष्टि जावे वहीं वहीं ब्रह्म देखना दृष्टिकूं ब्रह्ममयी करके सब जगतकूं ब्रह्ममय देखना सो दृष्टि श्रेष्ठ है अथवा द्रष्टा दर्शन दृश्य इनका जहां विराम हो वहीं दृष्टि करनी नासाग्र दृष्टि बालकों के लिये है ७ मैं असंग सच्चिदानन्द परिपूर्ण निरवयव एकरस हूं इस प्रकार चित्त का समाधानकरना समाधि सो दो प्रकार की है सविकल्प १ निर्विकल्प २ त्रिपुटीसहित सविकल्प १ त्रिपुटीरहित निर्विकल्प २ निर्विकल्प समाधिकरने के समय चार विघ्न होते हैं लय १ निद्रा आजानी विक्षेप २ वारम्बार विषयों का अनुसन्धान होना कषाय ३ चित्तका रागादि से तो हट आना परन्तु स्वरूप में न पहुंचना बीच की वृत्तिका नाम कषाय है इसीकूं स्तब्धीभावकहते हैं रसास्वाद ४ समाधि के आरम्भ समय सविकल्पका आनन्द होना कि मैं ऐसा आनन्दरूप परिपूर्ण हूं यो चिन्तवन होना इसकूं रसास्वाद कहते हैं प्राणायाम आसन विषयों में दोष

इष्ट्यादि करके लय विक्षेपादिका जय करना चाहिये व-शिष्ठजी कहते हैं चित्तनाश करने के दो मार्ग हैं ज्ञान १ योग २ ये दोनों मार्ग भगवान् ने भी गीताशास्त्र में कहे हैं देहादि से परे आत्माकूं जानना अर्थात् असंग नित्य-मुक्त अपने कूं निश्चय करना यो ज्ञान है और चित्तकी वृत्तिका निरोध करना इसका नाम योगहै चित्तवृत्ति नि-रोध का प्रचार चार प्रकार से वशिष्ठजी ने कहा है सदा वेदान्तशास्त्रकूं पढ़ना सुनना विचारना १ जो ब्रह्मनिष्ठ साधु हैं उनका संग करना २ समस्त वासनाका त्याग करना ३ अष्टांग योग करना ४ प्रथम साधन उत्तम अधिकारी के लिये हैं जो वहां चित्तका निरोध न हो तो ये तीन उत्तरोत्तरहैं*और जो चित्तकेनिरोधका प्रकार आत्मा संयमयोग नाम करके श्रीभगवान् ने गीताशास्त्र में कहा है उसका भी अर्थ संक्षेप करके लिखते हैं योगी मनकूं समाहित करे अकेला एकांतमें बैठकर भलेप्रकार जीते हैं वश किये हैं मन इन्द्रियादि जिसने सो निरा-कांक्ष होकर शरीरयात्रा से सिवाय भोजन वस्त्रादि सा-मग्रीकूं त्याग करके पवित्र देश में शुद्धभूमि में अपना आसन बिछाकर वो आसन बहुत नीचा ऊंचा न हो नीचेकुशाका आसन जापर उसके मृगचर्मादि फिर ऊपर वस्त्रबिछाकर मनकूं एकाग्रकरके वशकरी है चित्त इन्द्रियों की क्रिया जिसने सो उसपर बैठकर चित्त की शान्तिके लिये अभ्यास करे चित्तके एकाग्र करने में देह की धारणा भी उपयोगी है उसका धारण प्रकार लिखते हैं देहका जो मध्यभाग है उसकूं शिर और ग्रीवाकूं सम

निश्चय करके नासाग्रदृष्टि होकर पूर्वादिकूं नहीं देखता हुआ दूर होगया है भय जिसका सो ब्रह्मचारी व्रतमें स्थितहोकर आत्मामें है चित्त जिसका आत्माही में है परंपुरुषार्थ जिसके इसप्रकार युक्तहोकर बैठे श्रीभगवान् कहते हैं जो इसप्रकार सदा मनकूं समाहित करताहुआ निरोध हुआ है अन्तःकरण जिसका सो पराशांति कूं प्राप्तहोता है बहुत खानेवाले थोड़े खानेवालेकूं भी बहुत सोनेवाले बहुत जागनेवाले कूं भी योग सिद्ध नहीं होता तात्पर्य शास्त्रविहित सोना जागना बोलना चलना भोजनादि क्रिया जो नियमकरके करेगा उसकूं दुःखोंका नाश करनेवाला यो योग सिद्धहोताहै किस कालमें योग सिद्ध होता है इस अपेक्षा में कहते हैं जिस कालमें वश कियाहुआ चित्त आत्माहीमें निश्चय ठहरता है सब कामना जो इसलोक परलोककी हैं उनकी इच्छा नहीं करता उसकाल में जानों कि योग सिद्धहुआ जैसे दीवा बन्दमकान में एकरस प्रकाशता है हलता नहीं ऐसे जीताहै चित्त जिसने उसका चित्त प्रकाशता और निष्कम्पता करके ठहरताहै योग करके निरुद्धहुआ चित्त जिस अवस्था में संसार के विषयों से उपरामहो और जिस अवस्था में शुद्ध मन करके आत्माही को देखै आत्माही में तोष करे उस अवस्था में निरतिशय सुख कूं अनुभव करता है फिर उस अवस्था में स्थित हुआ तत्त्वसे नहीं चलता उस सुखकूं लाभ करके अपर जो ब्रह्मलोकादि के सुख उनकूं अधिक नहीं जानता उस अवस्था में स्थित हुआ बड़े भारी दुःख करके भी नहीं विचलता

दुःख का प्रथम किंचित् संयोगमात्र करके समस्त दुःख और विषय सम्बन्धी दुःखोंका वियोगहै जिसमें उसीकूं योग जानना सो योग आचार्य्य शास्त्र में निश्चय करके अवश्य अभ्यास करना चाहिये दुःख बुद्धि करके प्रयत्न की जो शिथिलता उसकूं त्यागना चाहिये टिट्टी के पुरुषार्थकूं स्मरण करना योग है जैसे कोई यो सङ्कल्प रखताहै कि मैं कुशाके अग्रभागमें जितना जल ठहरताहै कुशासे इतनाही जल उठाकर समुद्रकूं सुखाऊंगा ऐसाही चित्तके निरोध करने का सङ्कल्प रक्खे सङ्कल्प से आविर्भाव है जिनका ऐसे योगकी प्रतिकूल जो कामना उनकूं सबकूं त्याग करके और मन करके सबतरफ़से इन्द्रियग्राम कूं रोककर धीर्य करके शनैः शनैः अभ्यास क्रमकरके उपरामहो सहसा एकबारही जो पूर्वावस्था में खाना सोना बोलना बैठनाआदि था उनका सबका त्यागनकरे आत्मामें भलेप्रकार मनकूं स्थित करके कुछ चिंतवन न करे पूर्वाभ्यास रजोगुणके वशमें मन जो फिर चले तो प्रत्याहार करके अर्थात् जिस जिस विषय में मनजावे वहीं वहींसे रोककर मनकूं वश करे अर्थात् आत्माके विषय स्थिर करे इसप्रकार अभ्यास करते करते रजोगुण का क्षय होने से योगसुख प्राप्त होजाता है शान्त होगया है रजोगुण जिसका इसी हेतुसे शान्त है मन जिसका प्राप्त हुआ है ब्रह्मतत्त्व जिसकूं समाधि उसकूं जन्यसुख अपने आप प्राप्त होता है ऐसे सदा अभ्यास करते हुये योगी दूर होगये हैं पाप जिसके वो अनायास सुखपूर्वक ब्रह्मतत्त्व कूं प्राप्त होता है फिर

कृतार्थ होजाता है सो योगी सब भूतों में अपने आत्मा कूं और सब भूतों कूं अपने आत्मा के विषय देखता है सोरे समदृष्टि हैं जिसके उनकूं श्रीभगवान् कहते हैं कि जो मुझकूं सर्वत्र देखता है उसकूं मैं सदा अपरोक्षहूं वो मुझसे पृथक् नहीं जो मुझ कूं इस प्रकार जानता है जैसे इसकी इच्छा हो कर्म्म त्याग करके तो याज्ञवल्क्यवत् कर्म करता हुआ जनकवत् निषेध कर्म्म करता हुआ दत्तात्रेयवत् वर तो निश्चय मुक्त होगा वो सर्व प्रकार मेरे विषय वर्त्तता है मुझ से पृथक् कुछ नहीं जानता जैसे आप कूं दुःख सुख होते हैं दूसरे के दुर्वाक्य बोलते में दुःख स्तुति करने में सुख ऐसेही अपनी उपमा करके सबकूं समदेखे किसी कूं दुःख न दे ऐसा पुरुष मुझकूं परम सम्मत है यो योग का लक्षण श्रीभगवान् ने अर्जुन कूं कहा अर्जुन इस योग कूं असम्भव मानते हुये बोलते भये हे परमेश्वर! समता करके अर्थात् मनकी दो गति लय विक्षेप उनकूं जय करके केवल आत्माकार अवस्थान करके जो जो योग आपने कहा इस योग की दीर्घकाल जो स्थिति उसकूं नहीं देखताहूं किस हेतु से मनकूं चंचल होने से हे कृष्णचन्द्र! मन चंचल है स्वभावहीं से चपल है प्रमथन शीलवाला इन्द्रियों कूं क्षोभ करने वाला बलवाला है विचार करके भी जीतने के योग्य नहीं प्रतीत होता विषय वासना करके अनादि का विषयों के साथ बँधा हुआ है इस हेतु से दुर्भेद है जैसे महाराज आकाश में पवन चलता है उसकूं घटादि में रोकना कठिन है

ऐसे मनका निग्रह कठिन जानताहूं वशिष्ठजी भी कहते हैं समुद्रका पान करजाना सुमेरुकूं उखाड़ लेना आदि जो बहुत कठिन प्रतीत होते हैं सो होजाते हैं परन्तु मनका निग्रह कठिन है इस बातकूं अंगीकार करके मनके निग्रह का उपाय दिखातेहुये श्रीभगवान् बोलते भये हे अर्जुन! जो तुमने कहा सो सत्यहै मन ऐसाही है परन्तु मनकी दो गति हैं लय १ विक्षेप २ सो लयकूं तो अभ्यासकरके अर्थात् आत्माकार प्रत्ययवृत्ति करके जय करना और विक्षेपकूं वैराग्य करके अर्थात् विषयोंमें दोषदृष्टि करके जय करना इनदो उपाय से निश्चय मन का निग्रह होजाता है अन्तःकरण की वृत्तियों का सूक्ष्म होजाना इसीका नाम मनोनिग्रह है जिन्होंने देहादि नहीं वश कियेहैं उनकूं तो यह योग कठिनहै जिन्होंने अभ्यास वैराग्य करके मनकूं वश करलिया है उनकूं यह योग इसी उपाय करके सहज है अर्जुन बूझते हैं महाराज! प्रथम तो कोई पुरुष इसयोग में श्रद्धा करके प्रवृत्त हुआ परन्तु पीछे उसने भले प्रकार प्रयत्न न किया शिथिलाभ्यास रहा योग से चित्त चलकर विषयमें प्रवृत्त होगया तात्पर्य मन्द वैराग्य होगया अथवा अभ्यास करते करते देह का बीचमें पात होगया वो पुरुष योगका फल जो ज्ञान उसकूं नहीं प्राप्त होकर किस गतिकूं प्राप्त होता है क्योंकि कर्मों के फलकूं परमेश्वर में अर्पण करने से अथवा कर्मोंका अनुष्ठान न करने से स्वर्गादि की प्राप्ति जो फल सो तो उसकूं होगे नहीं ज्ञानके न होनेसे मुक्त न होगा दोनों तरफसे भ्रष्टहुआ महाराज कहीं छिन्नाभ्र-

बत् यह वहीं में नाश होजाता है हे परमेश्वर! आप सर्वज्ञहो इसका उत्तर देसक्केहो श्रीभगवान् बोलते भये हे अर्जुन! इसलोक में तो उसका जो दोनों मार्गसे भ्रष्ट होना है और परलोकमें जो नरक की प्राप्ति ये दोनों उसके नहींक्योंकि अच्छा कर्म करनेवाला कोई भी दुर्गतिकूं नहीं प्राप्त होता और जो तो श्रद्धाकरके योग में प्रवृत्तहोनेसे शुभकारी है फिर उसकी क्या गति होती है इस अपेक्षामें कहते हैं ब्रह्मलोकादि जो पुण्यकारी पुरुषों के भोगस्थान उनकूं प्राप्त होकर और बहुत दिन वहां के भले प्रकार भोग भोगकर जो इसलोकमें पवित्रधनवाले पुरुष हैं उनके कुलमें वो योगभ्रष्ट जन्म लेता है यह गति तो बड़े अभ्यासकरनेवाले की है और जिसके ज्ञान होने में कुछ थोड़ीसी देर रहीथी वह बुद्धिमान् ब्रह्मनिष्ठ योगियों के कुलमें जन्म लेता है इस लोक में मुक्तिका हेतु होने से ऐसा जन्म होना बड़ा दुर्लभ है वो जो पूर्व देहमें ब्रह्मविषय बुद्धि करके योग करताथा फिर वो दोनों कुल में से किसी कुलमें उसी योगकूं प्राप्त होजाता है फिर अधिक मुक्तिके लिये प्रयत्न करताहै जो पराये वशभी हो तो भी पूर्वाभ्यास उसकूं विषयों से हटाकर ब्रह्मनिष्ठ करदेताहै इस अर्थकूं कैमुतिकन्याय करके दृढ़ करते हैं ज्ञानकी इच्छावाला जो नर कुछ ज्ञान उसकूं प्राप्त नहीं हुआथा और पापके वशसे योगभ्रष्ट भी हुआ परन्तु फिर काल पाकर जिसकी यह गति कि शब्दब्रह्मकूं उल्लंघकर वर्त्तता है तात्पर्य वेदोंने प्रतिपादन किये जो स्वर्गादि फल उनका तिरस्कारकरके

उन से अधिक फल जो ब्रह्मानन्द उसकूं अनुभव करता हुआ अपने आपकूं कृतकृत्य जानताहै और जिन्हों ने जन्म जन्म में प्रयत्नकरके दूरकिये हैं पाप फिर पिछले जन्म में सिद्ध होकर वे उस गतिकूं अर्थात् ब्रह्मानन्दकूं प्राप्त होवें तो इस में क्या कहना है * अब और प्रकार के विषयों में दोषदृष्टिपूर्वक जीवन्मुक्ति के साधन सुनो संसारी लोक दो पदार्थोंकूं विशेष कहते हैं धन १ स्त्री २ प्रसिद्धहै कि चोरी, हिंसा, झूठ, दम्भ, काम, क्रोध, गर्व, मद, भेद, वैर, अविश्वास, स्पर्द्धा, असूया, निन्दा, छलादि अनेक अनर्थ करके धनसिद्ध होताहै और उसके कमाने में परदेशमें रहना नीचोंकी टहल करनी पराधीन रहना आदि और रक्षा करनेमें चोर राजा आदिका भय और व्यय करने में उसके कम होने का दुःख और नाश होने में जो दुःख उसका लिखना क्या चाहिये सब जानते हैं तात्पर्य जिसके आदि मध्य अन्त में क्लेशही क्लेशहै ऐसे दुःखोंके कारण धनकूं धिक्कारहै और जो प्राकृत जीव धनसे स्त्री मदिरा मांस द्यूत राग द्वेष अभिमान अहङ्कारादि ऐसे ऐसे यहां अनर्थ कर कर नरकका सामान करते हैं वो व्यवस्था कहांतक लिखें तात्पर्य जितने पाप हैं सब धनसे होते हैं यह धन पापी विद्वान् विचारवान्से भी अनर्थ करादेता है इसबातकी सिद्धिमें श्रुतिस्मृति इतिहास युक्ति आदि बहुत प्रमाण हैं इसके त्यागका अधिक माहात्म्य शास्त्र में लिखाहै संसारसमुद्र में कान्ता कांचन दो आवर्त हैं तीनों भुवन इनमें भ्रमरहे हैं जो इन दोनों से विरक्तहैं वो मनुष्यादि नहीं परमेश्वर

है स्त्री की स्तुति सुनो चांडाल के घरकी बराबर स्त्री है चांडालके घरमों मल मूत्र मांसादि पड़े रहतेहैं द्वारेमें चिह्न के लिये अस्थि लगेरहतेहैं अस्थिके खम्भ चर्मकी रज्जुसे बँधे रहते हैं मकानके ऊपर चर्म पड़े रहते हैं जो उसके मकानकी यह व्यवस्थाहै तो विचारो कि उसमकानकी जो मोरी जहांकूं उस मकान का मल जाता है उसकी क्या उपमा देनीचाहिये विचारो स्त्रीमें ये सब वस्तुहैं वा नहीं स्त्रीका शरीर मकानवत् भीतर उसके मलमूत्रादिका होना प्रसिद्धहै मुख द्वारेवत् दाँत अस्थिवत् पैर हस्तादि में अस्थि खम्भवत् नाड़ियों से बँधेहुये हैं शरीरके ऊपर चर्महै वा कुछ और है मोरीवत् उस शरीरमें मलमूत्र त्याग करनेके रस्तेहैं देखो उनकूं ऊपरसे देख २ यो जीव बिना विचारके कैसाआनन्द होताहै वृथा नरकवत् मोरी में डूबता है विचारो इससे सिवाय और क्या नरक होगा जो यह कहो कि हमकूं तो ये दोष नहीं फुरते बेशक हम भी जानते हैं कि ऐसे जीव जिनकूं विष्ठा मुरदे के मांसमें दोष नहीं फुरते उनके लिये अनेक प्रयत्नकरते हैं प्राप्ति के समय अपनेकूं कृतकृत्य मानतेहैं हमारी दृष्टिमें वे भी तो जीवहैं कुछ यह न समझना ऐसे शूकर कूकरही होते हैं मनुष्य भी बहुत ऐसे होते हैं अब विचारो मनुष्य शरीरमें और पशुमें क्या भेदहुआ हजारों जगे इनबातों का प्रसंगहै इसप्रसंगकूं बहुत क्यालिखें बुद्धिमान् जीव-न्मुक्ति की इच्छावाला इसीप्रकार सब पदार्थों में दोष दृष्टि कर कर उनका संग न करें और वोही चांडालके घर का दृष्टान्त अपने शरीर में घटावे अर्थात् चाण्डाल भी

उस घरमें यो अध्यास नहीं करता मैं घरहूं यो अध्यास है कि मेरा घरहै ऐसे अध्यास करनेसे तो वो चाण्डालहै और जो देहकूं ऐसा कहते हैं कि हम देहहैं अर्थात् ब्राह्मण क्षत्रिय आदि वर्ण ब्रह्मचारी आदि आश्रमी पण्डित धनवाले हैं बिचारो यो देह चाण्डाल के घर की बराबरहै वा नहीं जब देहकूं यो कहा मैं देहहूं फिर वो कौन हुआ तात्पर्य ऐसे बिचार देहमें से अध्यासका त्याग करे भ्रम से और पदार्थमें प्रतीत होना इसकूं अध्यास कहते हैं बासना दो प्रकारकी है शुद्ध १ मलिनी २ मुक्ति के लिये शास्त्रबिहित अनुष्ठान करनेकी और श्रवणादिकी बासना शुद्धा १ भोगोंकी बासना और संसारमें प्रसिद्धहोनेकी बासना मलिना २ शुद्ध बासना मुक्तिकी हेतुहै मलिन बासना जन्मकी हेतुहै देहयात्राके लिये भिक्षादि का जो प्रयत्न करना यो ज्ञानीका बासनाबंधका हेतु नहीं श्रीभगवान् कहतेहैं जिसमें शरीरका निर्बाह होवे वो कर्म करताहुआ पापकूं नहीं प्राप्तहोता ज्ञानीने शरीर यात्रासे सिवाय और बासना का त्याग करना तीन बासना बहुत दुःख करके त्यागी जाती हैं देहबासना १ लोकबासना २ शास्त्रबासना३ शरीरकूं बहुत उपटने चंदनादि लगा लगाकर चिकना चाँदना रखना और जो इच्छा रखनी कि यो शरीर सदा आरोग्य रहे यो देह बासना १ यो इच्छा रखनी कि सब लोग मुझकूं भला कहैं यो लोकबासना २ शास्त्रबासना दो प्रकारकी हैं एकतो बहुत पढ़ने सुनने की इच्छा रखनी अर्थात् जाने इस शास्त्र में क्या क्या है दूसरी जो कर्म जपादि करना शास्त्रबिहित करना यो

इच्छा रखनी यो शास्त्रबासना ३ इन करके युक्त जो पुरुष उसकूं ज्ञानी भी भले प्रकार नहीं होता तात्पर्य तीनों बासना किसी की पूर्ण हुई न होंगी युक्तिसे बिचार देखो वा गुरुशास्त्र से निश्चय करलो और ये जो दो प्रकार हैं एकतो मनोनाश, नाश बासना क्षय १ और दूसरा सदा वेदान्त का श्रवणादि करना २ इनका अवि-रोध सुनो जिसकूं संशय बिपर्यय करके रहित भले प्रकार ज्ञान होगया है उसकूं तो मनोनाश बासना क्षय मुख्य है श्रवणादि गौण हैं और जिसकूं भले प्रकार ज्ञान नहीं हुआ संशय बिपर्ययहै उसकूं श्रवणादि मुख्यहै मनोनाश बासना क्षय गौणहै मनो नाश बासना क्षय के साधन सुनो वाशिष्ठ में लिखा है जो जागताहुआ सुषुप्तिवत् रहै और जिसका जागना निर्वास न हो सो जीवन्मुक्त है श्रीभगवान् कहतेहैं ज्ञानी सदा संतुष्टरहै मनादिकूं बश रक्खे मौन रहे मौनी के तात्पर्यकूं कोई नहीं पासक्ता ब-हुत लिखनेसे क्या प्रयोजनहै मौनमें बहुत सुख और लाभहै और मैं असंग हूं यो दृढ़ विश्वास रक्खे आत्मा में अर्पित करी है मन बुद्धि जिसने जिससे लोग उद्वेग न करें जो लोगों से उद्वेग न करे सो भक्त मुझको प्यारा है भक्त स्थितप्रज्ञगुणातीत शब्द करके बहुत प्रकार श्री-भगवान् ने जीवन्मुक्तके लक्षण कहेहैं निस्पृही कोई नहीं आरम्भ जिसके किसीकूं नमस्कार न करनी न लेनी न किसी की निन्दा स्तुति करनी समर्थ हुआ मिथ्या जान-कर कर्मों का त्याग करदेना सर्पवत् बहुत पुरुषों से डरता रहे नरकवत् सम्मानसे डरता रहे मुरदेवत् स्त्रियों से ड-

रता रहे किसी स्त्री से बात न करे पहली देखीहुई कूं स्मरण न करे स्त्रियों की कथा न कहे न सुने काष्ठकी और लिखीहुईकूं भी न देखे उसकूं देवता ब्राह्मण कहतेहैं तात्पर्य जीवन्मुक्त कहते हैं ऐसे ऐसे और भी वाक्य हैं हे युधिष्ठिर! मुक्तिमें जाति कारण नहीं शम दमादि गुण कारण हैं ये शम दमादि गुण जो चाण्डाल के भी होंगे तो देवता उसकूं ब्राह्मण कहते हैं जैसे स्वप्न में प्रपञ्च प्रतीत होता है ऐसे जाग्रत् प्रपञ्च का निश्चय करे जैसे बाजीगरके पदार्थों में बासना नहीं होती ऐसे इन पदार्थों कूं जानकर बासना न करे अपने कूं असंग जानने से और संसार को मिथ्याभाव निश्चय करने से शरीर कूं क्षणभंगुर जानने से बासना का उदय नहीं होता जिसका निर्वासन मन है उसकूं कर्म और कर्म के फल स्वर्गादि समाधान करना मन का जपकरना आदि कुछ अपेक्षा नहीं आत्मानन्द से पृथक् सब इन्द्रजालवत् हैं जब ऐसा निश्चय हुआ फिर मनकी बासना कहां जावे जन्म जरा व्याधि मृत्यु में दुःखही दुःख है फिर भी कुछ एक बार नहीं बारम्बार दुःख उनका अनुसंधान करतेहुये बासना का उदय नहीं होता कुसंग के त्यागने से भी बासना का उदय नहीं होता ज्ञानी को किसीका संग न करना योंही उनका मुक्तपद है क्योंकि संगसे अशेष दोष होतेहैं योगरूढ़ भी कुसंग करनेसे प्रतीत होजाताहै थोड़ी सिद्धिवाला जो कुसंग से पतित होजावे तो इसमें क्या कहना है श्रीमद्भागवतमें लिखाहै स्त्री के संगी जो पुरुषहैं मुक्तिकी इच्छावाला

उनका संग त्यागदे इन्द्रियोंकूं शब्दादि विषयों में प्रवृत्त न करे बिचरे तो अकेला विचरे यदि एकान्त में बैठकर चित्तकूं अनन्त भगवान् से जोड़े जो सर्व्वथा संग न त्यागाजावे तो साधुओं का संगकरे समस्त बासनाका त्यागकरदेना चाहिये जो सब न त्यागी जावें तो मुक्तिकी बासना रक्खे स्त्रियोंका और स्त्रीसंगी पुरुषों का संग विद्वान् दूरसेही त्यागदे एकान्तमें बैठकर आलस्य कूं त्यागकरके स्वरूप का चिन्तवन कर स्त्रीका संग साक्षात् ऐसा अनर्थ नहीं करता जैसे स्त्रीके संगी का संग अनर्थ करता है दृष्टान्त यो है ज्येष्ठ के महीनेमें दिन भर धूपमें चला जावो वा खड़ारहो परन्तु मरता नहीं उस धूप करके तपाहुआ जो रेत उस में बैठरहने से निश्चय होताहै कि मरजावे इसी प्रकार सब पदार्थों की सन्निधि ऐसा अनर्थ नहीं करती जैसा भोगीका संग अनर्थ करताहै महज्जनोंका संग मुक्तिका हेतु है कामियों का संग नरक का हेतु है ऐसे ऐसे साधन करके युक्त जीव अपरोक्ष ज्ञानद्वारा निश्चय मुक्त होजाता है ॥

दश आदमी नदीउतरे पार जाकर संख्या करी कि कोई हममेंसे डूबा तो नहीं जिसने संख्याकरी उसने आप कूं न गिना फिर यो निश्चय करलिया कि हम दशथे एक डूबगया व आप को भूलकर रोनेलगा उस समय कोई और पुरुष वहां आगया उसने बूझा कितुम क्यों रोतेहो कहा कि हम दश पारसेउतरे थे अब नव हैं एक नदीमें डूबगया उसने जो अपने मनमें संख्या करी तो दश प्रत्यक्ष हैं उसने कहा तुम शोक मत करो दशवां है यो

वाक्य सुनकर उसको निश्चय हुआ कि दश-वांडूबा नहीं कहीं इसनेदेखाहै अपने आपकूं दशवां निश्चय नहीं किया इसकूं तो परोक्षज्ञान कहते हैं फिर उसने कहा कि तू मेरे सामने संख्याकर तब फिर उसने वैसेही आपसे पृथक् नवकूं गिना आपकूं न गिना उसने कहा दशवां तू है तब उसने जाना कि बेसन्देह दशवां मैं हूं इसकूं अपरोक्षज्ञान कहते हैं ऐसेही जिसने गुरुशास्त्र से सुनकर यो निश्चय कर रक्खाहै कि कोई ब्रह्महै आपकूं निश्चय नहीं किया कि मैं ब्रह्महूं इसकूं तो परोक्षज्ञान कहते हैं यो परोक्षज्ञान गुरुशास्त्रपूर्व्वक जिसकूं है सो ज्ञान बुद्धिपूर्व्वक उसके कियेहुये समस्त पापोंकूं अग्नि-वत् भस्म करदेताहै जब यो निश्चय हुआ कि मैंहीं ब्रह्महूं इसकूं अपरोक्षज्ञान कहते हैं यो अपरोक्षज्ञान गुरुशा-स्त्रपूर्व्वक जिसकूं है सो ज्ञान मूलाज्ञानसहित समस्त संसारकूं दूरकर देताहै अर्थात् उसका जन्म नहीं होता वो निरतिशयानन्द कूं प्राप्तहोताहै इसप्रकार परमात्मा का स्वरूप चिन्तवन करने से तृप्ति तो नहींहोती परन्तु ग्रन्थके विस्तारकेभयसे अलं परिपूर्ण परमेश्वरकूं बार-म्बार नमस्कार है कैसे वे परमेश्वरहैं जिन्होंने गोपियों के वस्त्र हरे हैं ऐसे जो श्रीकृष्णचन्द्र महाराज उन में प्रथम दासोऽहम् यो मेरी बुद्धि थी सो महाराजने अपने स्वभावके अनुसार मेरा भी दाकार हरलिया अब सोऽहम् यो शेषबुद्धिहोगई बारम्बार महाराजकूं इसहेतुसे नमस्कार करताहूं कि मुझकूं ऐसा निश्चय होताहै व्यतीत जन्मोंमें महाराजकूं कभी नमस्कार नहीं किया क्योंकि जो ये जन्महु-

आ और इसजन्ममें जो नमस्कारकिया तो आगेकूं जन्म नहीं होवेगा स्थूलादि शरीरोंके अभाव होनेसे नमस्कार कौन करेगा इसी लिये पिछले अपराध के क्षमाके लिये और आगेकूं नमस्कार न करना इसकृतघ्नता महादोष दूर होनेके लिये इसी जन्ममें वारम्वार नमस्कार करता हूं श्रीकृष्णचन्द्राय नमोनमः २ जिस की देवतामें परमभक्ति और जैसी देवतामें वैसेही गुरुमें है उस आत्मा कूं कहे हुये ये अर्थ प्रकाश होंगे अन्यकूं नहीं होंगे यो श्रुतिका अर्थ है श्रीमत्परमहंस परिव्राज स्वामी मलूक गिरि जी महाराज उनके चरण कमलों का पूजने वाला अनुचर शिष्य आनन्दगिरि नामने यो ग्रन्थ आनन्दामृतवर्षिणी मुन्शी बंशीधरजी जिन के किंचित् गुण प्रथम अध्यायमें लिखेहैं उनकूं सुखपूर्वक ब्रह्मतत्व जानने के लिये उनकी श्रद्धा भक्तिपूर्वक प्रार्थनासे अतिसुगम अतिपवित्र अतिगुप्त सब विद्याधर्मों में श्रेष्ठ जो इस में ब्रह्मतत्व सो सुखपूर्वक जानाजावे प्रत्यक्ष फल है जिस में सो आज द्वितीय ज्येष्ठ शुक्लपक्ष द्वितीया रविवार संवत् उन्नीससौ पन्द्रह १९१५ में विनिर्मित करके समाप्त किया पढने सुननेवालोंकूं शान्तिहो शुभहो हरिः ॐ तत्सत् हरिः ॐ तत्सत् हरिः ॐ तत्सत् श्रीकृष्णचन्द्राय नमोनमः इति श्रीआनन्दामृतवर्षिण्यांदशमोऽध्यायः समाप्तः ॥ १० ॥

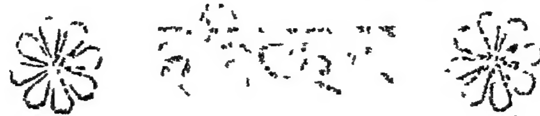
अपारसंसारसमुद्रमध्येनिमज्जतोमेशरणंकिमस्ति ॥
गुरो कृपालोकृपयावदैतद्विश्वेशपादाम्बुजदीर्घनौका १
बद्धोहिकोयो विषयानुरागःकोवाविमुक्तोविषयेविरक्तः ॥

कोवास्तिघोरोनरकःस्वदेहस्तृष्णाक्षयःस्वर्गपदंकिमस्ति
२संसारहृत्कस्तुनिजात्मबोधःकोमोक्षहेतुःप्रथितःसएव॥
द्वारंकिमेकंनरकस्यनारीकास्वर्गदाप्राणभृतामहिंसा ३ शे
तेसुखंकस्तुसमाधिनिष्ठोजागर्त्तिको वासदसद्विवेकी॥ के
शत्रवःसन्तिनिजेंद्रियाणिकान्येवमित्राणि जितानितानि
४ कोवादरिद्रोहिविशालतृष्णःश्रीमांश्चकोयस्य समस्त
तोषः ॥ जीवन्मृतःकस्तुनिरुद्यमोयःकावामृतास्यात्सु
खदादुराशा ५ पाशोहिकोयोममताभिधानंसंमोहयत्येव
सुरेवकास्त्री ॥ कोवामहांधोमदनातुरोयोमृत्युश्चकोवाप
यशःस्वकीयम् ६ कोवागुरुर्योहिहितोपदेष्टाशिष्यस्तुको
योगुरुभक्तएव॥ कोदीर्घरोगोभवएवसाधोकिमौषधंतस्य
विचारएव ७ किंभूषणाद्भूषणमस्तिशीलंतीर्थंपरंकिंस्व
मनोविशुद्धम् ॥ किमत्रहेयंकनकंचकान्ता सेव्यंसदाकिं
गुरुवेदवाक्यम् ८ केहेतवोब्रह्मगतेस्तुसन्तिसत्सङ्गतिर्दा
तिविचारतोषाः ॥ केसन्तिसन्तोखिलवीतरागाअपास्त
मोहाःशिवतत्त्वनिष्ठाः ९ कोवाज्वरःप्राणभृतांहिचिन्ता
मूर्खोऽस्तिकोयस्तुविवेकहीनः॥ कार्य्याप्रियाकाशिवविष्णु
भक्तिःकिंजीवनंदोषविवर्ज्जितंयत् १० विद्याहिकाब्रह्म
गतिप्रदायाबोधोऽस्तिकोयस्तुविमुक्तिहेतुः ॥ कोलाभआ
त्मावगमोहियोवैजितंजगत्केनमनोहियेन ११ शूरान्महा
शूरतरोऽस्तिकोवामनोजबाणैर्व्यथितोनयस्तु ॥ प्राज्ञोऽ
स्तिधीरश्चसमोऽस्तिकोवाप्राप्तोनमोहंललनाकटाक्षैः १२
विषाद्विषंकिंविषयाःसमस्तादुःखीसदाकोविषयानुरागी॥
धन्योऽस्तिकोयस्तुपरोपकारीकःपूजनीयोननतत्त्वनिष्ठः
१३ सर्वास्ववस्थास्वपिकिंनकार्य्यंकिंवाविधेयंविदुषाप्रय

त्नात् ॥ स्नेहंचपापंपठनंचधर्मः संसारमूलंहिकिमस्त्यवि
द्या १४ विज्ञान्महाविज्ञतमोऽस्तिकोवानार्यापिशाच्यानच
वंचितोयः ॥ काश्रृंखलाप्राणभृतांचनारीदिव्यंव्रतंकिंच
निरस्तदैन्यम् १५ ज्ञातुंनशक्यंहिकिमस्तिशैवैर्योषिन्म
नोयच्चरितंतदीयम् ॥ कादुस्त्यजासर्वजनैर्दुराशाविद्यावि
हीनःपशुरस्तिकोवा १६ वासोनसंगःसहकैर्विधेयोमूर्खै
श्चपापैश्चखलैश्चनीचैः ॥ मुमुक्षुणाकिंत्वरितंविधेयंस
त्सङ्गतिर्निर्ममतेषुभक्तिः १७ लघुत्वमूलंचकिमर्थितैवगुरु
त्वबीजंयदयाचनंकिम् ॥ जातोऽस्तिकोयस्तुपुनर्नजन्मको
वामृतोयस्यपुनर्नमृत्युः १८ मूकस्तुकोवाबधिरश्चकोवा
युक्तंनवक्तुंसमयेसमर्थः ॥ तथ्यंसुपथ्यंनशृणोतिवाक्यंवि
श्वासपात्रंनकिमस्तिनारी १९ तत्त्वंकिमेकंशिवमद्वितीयं
किमुत्तमंसच्चरितंवदन्ति ॥ किंकर्मकृत्वानहिशोचनीयः
कामारिकंसारिसमर्चनाख्यम् २० शत्रोर्महाशत्रुतमोऽ
स्तिकोवाकामःसकोपानृतलोभतृष्णः ॥ नपूर्यतेको विष
यैःसएवकिंदुःखमूलंममताभिधानम् २१ किंमण्डनंसा
क्षरतासुखस्यसत्यंचकिंभूतहितंतदेव ॥ सत्यात्सुखंकिंवि
यसेवसम्यक्देयंपरंकिंत्वभयंसदैव २२ कस्यास्तिनाशे
मनसोहिमोक्षःक्वसर्वथानास्तिभयंविमुक्तौ ॥ शल्यंपरंकिं
न्निजमूर्खतैवकेकैह्युपास्यागुरवश्चवृद्धाः २३ उपस्थिते
प्राणहरेकृतांतेकिमाशुकार्यं सुधियाप्रयत्नात् ॥ वाक्काय
चित्तैःसुखदंयमघ्नंमुरारिपादाम्बुजमेवचिंत्यम् २४ केद
स्यवःसन्तिकुवासनाख्याःकःशोभतेयःसदसिप्रविद्यः ॥
मातेवकायासुखदासुविद्याकिमेधतेदानवशात्सुविद्या २५
कुतोहिभीतिःसततंविधेयालोकापवादाद्भवकाननाच्च ॥ को

वास्तिबंधुःपितरौचकोवाविपत्सहायौपरिपालकौयौ २६
बुद्ध्यानबोद्धुंपरिशिष्यतेकिंशिवंप्रशान्तंनुखबोधरूपम् ॥
ज्ञातेतुकस्मिन्विदितंजगत्स्यात्सर्व्वात्मकेब्रह्मणिपूर्णरूपे
२७ किन्दुर्लभंसद्गुरुरस्तिलोकेसत्सङ्गतिर्ब्रह्मविचारण
ञ्च ॥ त्यागोहिसर्वस्यशिवात्मबोधःकिंदुर्जयंसर्वजनैर्म
नोजः २८ पशोःपशुःकोनकरोतिधर्मं प्राधीतशास्त्रोपिन
चात्मबोधः ॥ किंतद्विषंभातिसुधोपमंस्त्री केशत्रवोमित्र
वदात्मजाद्याः २९ विद्युच्चलंकिंधनयौवनायुर्दानम्पराङ्कि
ञ्चसुपात्रदत्तम् ॥ कण्ठंगतैरप्यसुभिर्नकार्य्यं किंकिंविधे
यंमलिनंशिवार्च्चा ३० किङ्कर्मयत्प्रीतिकरंमुरारेःक्वस्था
नकार्य्यंसततम्भवाब्धौ ॥ अहर्निशंकिम्परिचिंतनीयं सं
सार मिथ्यात्वशिवात्मतत्त्वम् ३१ कण्ठंगतावाश्रवणङ्गता
वाप्रश्नोत्तराख्यामणिरत्नमाला ॥ तनोतुमोदंविदुषांसुर
म्यारमेशगौरीशकथेवसद्यः ३२ ॥

इत्यानन्दामृतवर्षिणी समाप्ता ॥



[illegible] ॥

जो कि सम्पूर्ण पुराणों में श्रेष्ठ है जिसको पंचम वेद भी कहते हैं जिस में आदि १ सभा २ वन ३ विराट ४ उद्योग ५ भीष्म ६ द्रोण ७ कर्ण ८ शल्य ९ सौप्तिक १० विशोक ११ स्त्री १२ शान्ति १३ अनुशासन १४ अश्वमेध १५ आश्रमवासिक १६ मुशल १७ स्वर्गारोहण १८ और हरिवंशपर्व १९ हैं—जिसको आगरापुर पीपलमण्डीनिवासि चौरासिया गौड़ वंशावतंस प्रधान पण्डित कालीचरणजी संस्कृताध्यापक केनिंगकालेज लखनऊ ने संस्कृत महाभारत से प्रत्यक्षर का भाषा में उल्था किया है इसके पृथक् २ पर्व भी खरीदारों को मिल सक्ते हैं—यह पुस्तक भी अवश्यही अवलोकन करनीचाहिये ॥

भविष्यपुराण भाषा ॥

जिसमें भविष्य अर्थात् जो आगे होवेंगी उन्हीं वस्तुओं का वर्णन और अनेक प्रकार के देवी और देवताओं के व्रतादिक और उद्यापनादि वर्णित हैं—जिसको जयपुरनिवासि पण्डित दुर्गाप्रसादजीने भाषान्तर किया है ॥

वाराहपुराण भाषा ॥

जिसमें भगवान् वाराहजीने पृथ्वी से धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष सिद्ध हो के लिये इतिहाससंयुक्त कथायें वर्णन की हैं—जिसको जयपुरनिवासि पण्डित माधवप्रसादजीने भाषान्तर किया और पण्डित सरयूप्रसाद और दुर्गाप्रसादजीने उसी ग्रन्थ को शुद्ध किया था वह अच्छी तरह से छपाहुआ वर्त्तमान है ॥

विष्णुपुराण भाषा ॥

जिसमें जगदुत्पत्ति, स्थिति, पालन और सोमवंशी और चंद्रवंशी राजाओं का कथन वा श्रीकृष्णजीका परिपूर्ण चरित्रादि कथा वर्णित हैं जिसको बारहबंकीप्रदेशीय धनावलीग्रामनिवासि पण्डित महेशदत्तजीने प्रत्यक्षर का भाषा में अर्थ किया है ॥

मैनेजर अवधअखबार प्रेस

हजरतगंज—लखनऊ